जीवदया प्रकरण—काव्यत्रयी

अनुवादक

भँवरलाल नाहटा

प्रकाशक

नाहटा ब्रादर्स

नं० ४, जगमोहन मल्लिक लेन

कलकत्ता-७

वट्टइ दक्खिण देसे भारहवासे कन्नडाभिहाणे
हंपी णयर पसिद्धो किक्किंधे इति पुव्वकालंमि १

सिरि रयणकूट सिहरे अइरम्मे गिरिगुहा ठाणे
णइ तुंगभद्द कूले रज्जन्ते जुगवरो गुरुणो २

सहजाणंद मुणिंदो तिअसवई संपूइओ चरणो
खाइग्ग सम्मदिट्ठी पयड कओ अप्प सब्भाओ ३

कलिकायाए णयरे संठिओ वंदते भमरो
गुरुचरण - कमल - रत्तो अइभत्ती हीअय मज्झंमि ४

जीवदया ए जुत्तो नाना चित्तक पयरण पाइए रइओ
बालावबोध पयरण सुविहिय गुंफिओ देस भासाए ५

कव्वत्तयाणुवादो कोउयवस कया मंदबुद्धीए
सुगुरु - चरण - कमले समप्पियं भत्ति जुत्ताए ६

—भँवरलाल नाहटा

प्रवेशिका

गत वर्ष अजीमगज के ज्ञानभण्डार से श्री मोतीचन्दजी बोथरा द्वारा "श्री जिनभद्रसूरि स्वाध्याय पुस्तिका" की उपलब्ध हुई, जिसके अन्वेषण में हम गत तीस वर्षों से थे। इस प्रति में कतिपय अप्रकाशित ऐतिहासिक कृतियाँ हैं। यह प्रति स० १४६१ में लिखी हुई है, इसमें 'जीवदया प्रकरण' और 'नाना वृत्तक प्रकरण' की उद्‌बोधक रचनायें देखी तो उन्हें नकल करने की स्वाभाविक इच्छा हो गई। गत चौमासी चौदस के दिन मुमुक्षुवर्य श्री हरखचदजी बोथरा ने इसे देखकर अनुवाद कर डालने की प्रबल प्रेरणा की तदनुसार दोनों ग्रन्थों का अनुवाद प्रस्तुत कर दिया। इसके बाद उन्होंने पद्यानुवाद करनेका आदेश दिया तो वह भी जैसा हो सका, पाठकों के समक्ष है। इसे प० श्री सूरजचदजी डागी ने सशोधित कर देने की कृपा की है। प्रस्तुत दोनों ग्रन्थों की भाषा प्राकृत है और धर्म के मर्म से ओत प्रोत है। तीसरा ग्रन्थ बालावबोध प्रकरण भी औपदेशिक व सदाचार विषयक होने से साथ ही दिया जा रहा है।

चौवीस वर्ष पूर्व जब श्रीजिनहरिसागरसूरिजी महाराज जैसलमेर थे, हमें वहाँ के ज्ञानभण्डार की (पोथी न० ७६ क्रमाक १३२६ पत्र; १८१ में) स० १३८५ से स० १३८६ के बीच लिखी हुई प्रति में अपभ्र श भाषा की तीसरी "बालावबोध प्रकरण" नामक गाथा ११६ की रचना मिली जिसे हमने नकल करली। यह रचना श्री जिनपतिसूरिजी के किसी शिष्य की मालूम देती है जिसका रचनाकाल स० १२५० के आसपास अनुमानित है। प्रस्तुत कृति में व्रत, सप्तव्यसन त्याग,

भक्ष्याभक्ष्य आदि धर्म और सदाचार विषयक व्यापक उपदेश है। इस काल की हिन्दी रचनाओं का जैनेतर साहित्य में तो अभाव ही है। इसकी भाषा अपभ्रंश है जिससे हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं का विकास हुआ है। अतः इसका महत्व भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी अत्यधिक है क्योंकि यह इन सभी भाषाओं के बीच की कड़ी है और इसके शब्द रूपों से किस प्रकार भाषा विकास हुआ इसका विवेचन बड़ा मनोरञ्जक और उपयोगी होने पर भी श्री जैनश्वेताम्बर पंचायती मंदिर के सार्द्धशताब्दी महोत्सव के स्मारक ग्रन्थ के सम्पादन कार्य में अत्यन्त व्यस्तता के कारण दिया जाना सम्भव नहीं हो सका है। पूज्य काकाजी श्री अगरचन्दजी के आदेशानुसार तीन चार वर्ष पूर्व मैंने बालावबोध प्रकरण का अनुवाद मात्र किया था और अभी जब उपर्युक्त दोनो ग्रन्थ छप चुके तो साथ ही में प्रकाशित करने के लिये काकाजी ने भेजा जिसे साथ ही त्वरया प्रकाशित किया जा रहा है। इसकी एक मात्र प्रति मिली थी, अतः पाठ शुद्धि और पाठान्तरादि का सम्पादन वैज्ञानिक ढंग से नहीं हो सका।

जीवदया प्रकरण और नाना-वृत्तक प्रकरण भी एक ही प्रति के आधार से प्रकाशित हो रहे हैं। यद्यपि जीवदया प्रकरण की ताड़पत्रीय प्रतियाँ पाटणके भण्डारों में पर्याप्त उपलब्ध है पर वहाँ से प्रतियाँ प्राप्त कर सम्पादन करना समय सापेक्ष है। अतः द्वितीयावृत्ति का अवसर मिला तो इन्हें सुसम्पादित करने का प्रयत्न किया जायगा। इसकी प्राचीनतम प्रति सं० ११८१ की लिखी हुई है इससे इस ग्रन्थकी प्राचीनता स्वयं सिद्ध है। पाटण भण्डार में निम्नोक्त प्रतियां है —

सघवीपाडा भण्डारमें ७ प्रतियाँ हैं जिनमें चार पूर्ण है, एक में गाथा १११, एकमें ११५ (सं० १३३० लिखित) दो में ११६ है, खेतरवसी के भंडार में ११२ गाथाएं नं. ३ भण्डार में ११३ गाथाओं की २ प्रतियाँ हैं जिनमें एक स० ११८१ लिखित है। वाड़ी पार्श्वनाथ भण्डार की प्रति स० १३३२ लिखित है और अदुवसी भण्डार की प्रति में ११२ गाथाएं हैं। इस न्यूनाधिकता का कारण यही है कि कोई गाथा सुभाषित रूप में अन्य प्रकरण से उद्धृत करली गई होगी।

मुनिराज श्री संतबालजी महाराज ने इसका आमुख लिख देने की कृपा की है। पूज्या साध्वीजी महाराज श्री चन्द्रश्रीजी के उपदेश से श्री केशरीचदजी वच्छावत की स्मृति में उनके परिवार द्वारा पाँच सौ प्रतियाँ प्रकाशित कर जीव-दया प्रचार में सराहनीय सहयोग दिया है। जीव-दया प्रकरण पढकर पाठक जीव-दया उर में धारण करेंगे तो पुस्तक की सार्थकता सिद्ध होगी।

कलकत्ता
मेरु-त्रयोदशी
वीर सवत् २४६१

विनीत
भँवरलाल नाहटा

अन्तरंग-पूजा-रहस्य पद

नित प्रभु पूजन रचावूं   मैं घट में (२)

सद्गुरु शरण-स्मरण तन्मय हो, स्व पर सत्ता भिन्न भावूँ मैं ॥१॥
प्राण-वाणी रस मंत्र आराधत स्वरूप लक्ष्य जमावूँ मैं० ॥२॥
स्व सत्ता ज्ञायक - दर्पण में, प्रभु - मुद्रा पधरावूँ मैं० ॥३॥
षट् चक्र-क्रम भेद प्रभु को, मेरु दण्ड शिर लावूँ मैं० ॥४॥
कमल सहस्र दल-कर्णिका स्थित, पाण्डु शिला पर ठावूँ मैं० ॥५॥
ज्ञान सुधाजल सिंचत सिंचत, प्रभु सर्वांग नहलावूँ मैं० ॥६॥
ज्ञान-दीपक निज ध्यान-धूप से, आठों कर्म जलावूँ मैं० ॥७॥
हर्षित कमल सुमन वृत्ति चुन चुन, प्रभु पद पगर भरावूँ मैं० ॥८॥
दिव्य गन्ध प्रभु अक्षत अंगे, लेपत रोम नचावूँ मैं० ॥९॥
सहजानन्द रस शम नैवेद्ये, द्वन्द्व दुखादि नसावूँ मैं० ॥१०॥
निराकार साकार अभेदे, आत्मसिद्धि फल पावूँ मैं० ॥११॥

आमुख

ये तीनों ग्रन्थ लगभग ६००-७०० वर्ष पहले के लिखे हुए प्राप्त हुए हैं और शोध प्रेमी श्री भँवरलालजी नाहटा इनका सकलन व अनुवाद करके प्रकाशित कर रहे हैं, इससे अत्यन्त प्रसन्नता होती है, क्योंकि कलकत्ता के ऐसे ऐतिहासिक श्वेताम्बर जैन पंचायती मन्दिर का सार्द्ध शताब्दी महोत्सव मनाने के अवसर पर जैन धर्म का मर्म समझाने वाली जैन साधु विरचित सत्कृतियाँ प्रकाशित हों यह वस्तुतः समुचित ही कहा जा सकता है।

इन तीनों लघु ग्रन्थों के नाम क्रमशः "जीवदया प्रकरण" 'नाना वत्तक प्रकरण' और 'बालावबोध प्रकरण' हैं। पहले ग्रन्थ में ११५ गाथाएँ हैं, दूसरे ८१ गाथाएँ हैं और तीसरे में ११६ गाथाएँ हैं। तीनों ग्रन्थों में मुख्य प्रतिपाद्य विषय जीवदया अथवा अहिंसा और व्यापक धर्म तत्त्व हैं। दया वस्तुतः सभी धर्मों के मूल में अनिवार्य गुण है। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी को कहना पड़ा—"दया धर्म का मूल है।" और लगभग सभी महापुरुषों ने निर्विवाद रूप से प्रतिपादन किया है—'दया धर्म नदीतीरे सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः'।

एक गया तो सब कुछ गया

इसीलिये धर्म में से अहिंसा के निकल जाने पर सब कुछ चला गया समझना चाहिये। यह बात तो अब सभी स्वीकार करने लगे हैं कि इस जगत् में धर्म के सिवाय कोई तारने वाला नहीं है। धर्म के सिवाय और कोई मार्ग विश्व की छोटी-बड़ी समस्याओं के हल करने में समर्थ नहीं है। भारत धर्म प्रधान देश है और भारत की समाज-व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था धर्म की बुनियाद पर आधारित रही है, इसीलिए दुनिया भारत की ओर आशा लगाई हुई है। इस दृष्टि से किसी भी युग में धर्म के तत्त्व और रहस्य को समझने

की जरूरत थी, उसकी अपेक्षा वर्तमान वैज्ञानिक युग में सबसे अधिक जरूरत है। यह बात प्रकारान्तर से इन लघुकाय ग्रन्थों में कूट कूट कर भरी है। क्योंकि बीच के युग में धर्म के नाम पर अनेक अनर्थ दुनिया में हुए हैं और बार में जीवदया के नाम से या तो तप त्याग विहीन पशु दया की गई है, या मानव दया को भुला कर या उसकी ओर उपेक्षा करके सिर्फ प्राणिदया कार्य ही किये गए हैं। किन्तु प्रस्तुत ग्रन्था में जीवदया को मुख्यता देकर उसका साङ्गोपाङ्ग विवेक भी बता दिया है। जैन धर्म यह मानता है कि आप सिर्फ मानव दया ही करेंगे, और मानवेतर प्राणी पर क्रूरता दिखाएँगे अथवा उस क्रूरता को निष्क्रिय या कायर बन कर सह लेंगे, जैसे कि कई बार धर्म के नाम से होने वाला पशुवध सह लिया जाता है तो वह मानवदया भी अनिश्चित एवं अकेले एक के अङ्क के जैसी बन जायगी। जब मानव दया के एक अङ्क के साथ प्राणिदया का सुन्दर दूसरा एक अङ्क मिलायगे तो निश्चित ही उसकी कीमत ग्यारह (११) जितनी हो जायगी। प्रसंगोपात मुझे कहना चाहिए वर्तमान जैनों में प्रायः प्राणिदया का एक अङ्क मजबूत रहा है, लेकिन मानवदया का एक अङ्क इसके साथ न होने से जीवन और जगत् में जो रौनक आनी चाहिए, वह नहीं आ पाती। इसके विपरीत अन्य धर्मों में प्राणिदया के एक अङ्क रहित मानवदया का एक अङ्क होने से वह भी लंगड़ी बन गई है। जैनों को प्राणिदया के साथ साथ मानव दया को आमतौर से अपनाना होगा। तभी जैन धर्म का मधुर भूतकाल फिर से ताजा होगा। मानवदया के पूर्ण और सांगोपांग आचरण के लिए जैनों को अहिंसा के साथ सत्य के अङ्क को अनिवार्य रूप से जोड़ना पड़ेगा। आज जैनों का सत्य का अङ्क बिलकुल कच्चा बन जाने से अहिंसा भी थोथी बन गई है। वह प्रभावशाली नहीं रही और व्यवहार में अन्याय, अनीति, बेईमानी आदि अनिष्ट (जिन्हें सामाजिक हिंसा कह सकते हैं) बढ़ गए हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अहिंसा और सत्य इन दोनों के पक्के होने पर ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अन्य अनेक छोटे बडे व्रत पक्के हो जायेंगे। इसी बात के इन दोनों ग्रन्थों में यत्र तत्र संकेत मिलते हैं।

जैन धर्म की सार्वभौमता

जैनों का लक्ष्य करके इतना कहने का कारण यह है कि 'न धर्मो धार्मिकैर्विना' (धर्माचरण करने वालों के बिना धर्म टिकता नहीं) इस सूत्र के अनुसार जैन धर्म में विश्व में एकेन्द्रिय जैसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं चक्षुअगोचर प्राणियों की दया से लेकर मानवदया तक की बात सिद्धान्त युक्त (आत्मौपम्य) व्यवहार के साथ आचरण करके बताई है। उसकी साधना व्यवहार्य है। इसी प्रकार 'नमो लोए सव्वसाहूणं' कहकर जगत् के सभी साधुओं को नमस्कार करने की उदारता और गुणपूजात्मक दृष्टि जैनधर्म में ही मिलती है। साथ ही जैनधर्म की यह भी विशेषता है कि उसने व्यक्ति धर्म के साथ समाजधर्म की साधना पर इतना ही नहीं, बल्कि इससे विशेष जोर दिया है। फिर भी व्यक्तिधर्म और समाजधर्म की सच्ची समतुला सुरक्षित रहे, इतनी हद तक गहराई के साथ साथ व्यापकता की सुरक्षा की है। इसलिए समुद्र में जैसे सभी नदियाँ समा जाती हैं, परन्तु समुद्र, सभी नदियाँ एकत्रित हों तो भी उनमें नहीं समा सकता वैसे जैन धर्म एक महासागर रूप धर्म है, उसमें सभी धर्मों का समावेश हो सकता है। इस दृष्टि से जैन धर्म के साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप धर्म संघ पर सबसे अधिक जिम्मेवारी आ जाती है कि वे अपने जीवन में धर्म के सक्रिय सामुदायिक आचरण द्वारा विश्व को जैनधर्म के स्वरूप का दर्शन करावें। सौभाग्य से, महात्मा गांधीजी ने जैनधर्म की अहिंसा को व्यापक बनाने के लिए अहिंसा का सामूहिक प्रयोग करके राजमार्ग तैयार कर दिया है. अब

साधु साध्वियो को केवल धर्म-स्थानो में ही अहिंसा को बन्द न करके मानव जीवन के हर क्षेत्र में उसका सामूहिक प्रयोग करने की तैयारी करनी चाहिए। इस प्रयोग में कदाचित शुरू शुरू में उन्हें अधिक श्रावक श्राविकाओं का सहयोग न मिले तो भी गाँधीजी की सर्वांगी दृष्टि को पचाने वाले कार्यकर्ता-कार्यकर्त्री (साधक साधिका) अवश्य मिल सकेंगे। भालनलकांठा प्रदेश में हुआ धर्ममय (अहिंसक) समाज रचना का प्रयोग इस बात का ज्वलत प्रमाण है। अहिंसा, सप्त कुव्यसन त्याग और धर्म तत्त्व से उसकी शुरूआत हुई थी। आज तो उस विचार एव कार्य का प्रचार-प्रसार दूर-दूर तक हो गया है। इस प्रकार की धर्मक्रान्ति के लिए साधु जीवन में प्राण, प्रतिष्ठा और परिग्रह रूप त्रिविध ममत्व छोड कर त्याग, मृत्यु-आलिंगन और प्रतिष्ठा परिहार का तप व्यक्तिगत सामूहिक रूप से जरूरी है।

मुझे आशा ही नही, विश्वास है कि एक साथ प्रकाशित होने वाले इन तीनों लघु काय ग्रन्थो में से जिज्ञासा और गहराई के साथ चिन्तन करने वाले पाठक भाई बहनों को उक्त वस्तुतत्त्व अवश्य उपलब्ध होगा। मैं पुन इन तीनो लघु कृतियों को प्रकाशित करने के लिये श्री भँवरलालजी नाहटा को धन्यवाद देता हूँ।

कच्छी जैन भवन
कलकत्ता
ता० १ ६५

—सन्तबाल

जीवदया प्रकरण

[१]

संसय तिमिर पयंगं भवियायण कुमय पुन्निमा इंदं।
काम गइंद मइंदं जग-जीव हियं जिणं नमिउं ॥१॥

संशय रूपी अन्धकार के लिए सूर्य, भविक जन कुमुद को विकास करने के लिए चन्द्र, कामरूपी हाथी के वश करने के लिए मृगेन्द्र के सदृश जगत के जीवों के हितकारी जिनेश्वर को नमस्कार करता हूँ।

संशय तिमिर हर तरणि सम जिनका परम विज्ञान है।
भविजन कुमुद सुविकाश कारक चन्द्रसम छविमान है॥
करिवर्य मकरध्वज विदारण सिंह-सम उपमान है।
जग के हितंकर तीर्थपति को नमन मंगल खान है॥१॥

[२]

पंच महव्वय गुरु भार धारए पंच समिइ तिहि गुत्ते।
नमिऊण सयल समणे जीवदया पगरणं वुच्छं॥२॥

पच महाव्रत का गुरुतर भार धारण करनेवाले, पच समिति, तीन गुप्ति युक्त समस्त श्रमणों को नमस्कार करके जीवदया प्रकरण कहता हूँ।

पाँचों महाव्रत के अमित गुरु भार को धारण करें॥
मन-वचन-काया गुप्ति, पाँचों समिति संचारण करें।
सकल श्रमणों को नमन कर दुरित निष्कारण करें।
प्राणीदया प्रकरण वचन से वैर-मद वारण करें॥२॥

[३]

पाडित्तय छदण सुत्त अर्थं च नेय जाणामि ।
नय वागरणे विविक देसी तह लक्खण वुच्छ ॥३॥

छन्द, सूत्र और अर्थ को म न जानता हूँ और न उनके नियमो को पालता हूँ। न्याय, व्याकरण तथा देश्य लक्षणो को (न जानते हुए) भी कह रहा हूँ।

नहिं ज्ञान मुझको छन्द भाषा आदि का कुछ लेश भी।
सिद्धान्त आगम सूत्र का नहिं ज्ञान अर्थ प्रवेश भी॥
व्याकरण लक्षण देश्य भाषा न्याय का अनुमान भी।
है तनिक भी मुझको नहीं तो भी सुनें धीमान भी॥३॥

[४]

एयारिसयस्स मह खमियव्व पडिएहिं पुरिसेहिं।
ऊणाइ रित्तयं ज हविज्ज अन्नाण दोसेण ॥४॥

इस प्रकार मुझ से न्यूनता और नियम रहितता आदि अज्ञानजन्य दोष हो जायँ, उसके लिए पण्डित पुरुष क्षमा करें।

ऐसा महान अयोग्य हूँ मैं सवथा हि प्रकार से।
न्यूनता अरु रहितता के दोष सूत्र विचार से॥
अज्ञानता वशवर्त्ति से हो जाय दूषण जो कभी।
पण्डित सुधीजन ही कर औदार्य्यपूर्ण क्षमा सभी॥४॥

[५]

मग्गइ सुक्खाइ जणो ताइय सुक्खाइ हुंति धम्मेण।
धम्मो जीवदयाए जीवदया होइ खती ए॥५॥

लोग सुख चाहते हैं, सुख धर्म करने से होता है, धर्म जीवदया में है और जीव-दया क्षमा से होती है।

मानव सदा सुख कामना करते सदा संसार में।
पर सौख्य प्राप्ति न हो सके विन धर्म के आचार में॥
सद् धर्म श्रेष्ठ कहा गया है मात्र प्राणी की दया।
क्षमापूवक जो करे जग जीव पर करुणा मया॥५॥

[६]

पर वचणा निमित्तं जंपइ अलियाइं जणवओ नूणं।
जो जीव-दया जुत्तो अलिएण न सो परं दुहइ॥६॥

दूसरों को ठगने के लिए लोग जान-बूझ कर मिथ्या भाषण करते हैं, पर जो जीवदया युक्त हैं वे झूठ (विश्वासघात) के द्वारा दूसरो को दुखी नहीं करते।

पर वंचना के हेतु जो जन कपट का आश्रय लिये।
जो वोलते मिथ्या वचन है घात मन निश्चय किये॥
कारुण्य प्रतिमा किन्तु जो प्राणीदया से युक्त है।
पर कष्टदातृ अलीक भाषा वोलते न अयुक्त है॥६॥

[७]

तण कट्ठं च हरंतो दूमइ हिययाइ निग्घिणो चोरो।
जो हरइ परस्स धणं सो तस्स विलुपए जीवो॥७॥

तृण काष्ट को हरने वाला भी दुर्मति हृदय वाला अतिघृणास्पद चोर है। जो पराये धन को हरण करता है वह उसका प्राण ही नाश

[३]

पाढित्तय छदण सुत्त अत्थं च नेय जाणामि।
नय वागरणे विविरू देसी तह लक्खण मुच्छ ॥३॥

छन्द, सूत्र और अथ को म न जानता हूँ और न उनके नियमो को पालता हूँ। न्याय व्याकरण तथा देश्य लक्षणो को (न जानते हुए) भी कह रहा हू।

नहिं ज्ञान मुझको छन्द भाषा आदि का कुछ लेश भी।
सिद्धान्त आगम सूत्र का नहिं ज्ञान अर्थ प्रवेश भी॥
व्याकरण लक्षण देश्य भाषा न्याय का अनुमान भी।
है तनिक भी मुझको नही तो भी सुनें धीमान भी॥३॥

[४]

एयारिसयस्स मह खमियव्वं पंडिएहिं पुरिसेहिं।
ऊणाइ रित्तयं ज हविज्ज अन्नाण दोसेण ॥४॥

इस प्रकार मुझ से न्यूनता और नियम रहितता आदि अज्ञानजन्य दोष हो जायें उनके लिए पण्डित पुरुष क्षमा करें।

ऐसा महान अयोग्य हूँ मैं सवथा हि प्रकार से।
न्यूनता अरु रहितता के दोष सूत्र विचार से॥
अज्ञानता वशवर्त्ति से हो जाय दूषण जो कभी।
पण्डित सुधीजन ही कर औदार्य्यपूर्ण क्षमा सभी॥४॥

[५]

सग्गाइ सुक्खाइ नरो ताइय सव्वाइ हुंति धम्मेण।
धम्मो जीवदयाए जीवदया होइ खती ए॥५॥

लोग सुख चाहते हैं, सुख धर्म करने से होता है, धर्म जीवदया में है और जीव-दया क्षमा से होती है।

मानव सदा सुख कामना करते सदा संसार मे।
पर सौख्य प्राप्ति न हो सके बिन धर्म के आचार में॥
सद् धर्म श्रेष्ठ कहा गया है मात्र प्राणी की दया।
क्षमापूवक जो करे जग जीव पर करुणा मया॥५॥

[६]

पर वचणा निमित्तं जंपइ अलियाइं जणवओ नूणं।
जो जीव-दया जुत्तो अलिएण न सो परं दुहइ॥६॥

दूसरों को ठगने के लिए लोग जान-बूझ कर मिथ्या भाषण करते हैं, पर जो जीवदया युक्त हैं वे झूठ (विश्वासघात) के द्वारा दूसरो को दुखी नहीं करते।

पर वंचना के हेतु जो जन कपट का आश्रय लिये।
जो बोलते मिथ्या वचन है घात मन निश्चय किये॥
कारुण्य प्रतिमा किन्तु जो प्राणीदया से युक्त है।
पर कष्टदात् अलीक भाषा बोलते न अयुक्त हैं॥६॥

[७]

तण कट्ठं च हरंतो दूमइ हिययाइ निग्घिणो चोरो।
जो हरइ परस्स धणं सो तस्स विलुपए जीवो॥७॥

तृण काष्ट को हरने वाला भी दुर्मति हृदय वाला अतिघृणास्पद चोर है। जो पराये धन को हरण करता है वह उसका प्राण ही नाश करता है।

तृण काष्ठ आदिक भी पराया जो किसी ने हर लिया।
दुर्मत हृदय यह चोर निर्घृण तत्त्वत पापी हिया॥
जो धन पराया हरण करता वह महापापी कहा।
अर्थ जिसका प्राण है उस प्राण का घातक रहा॥७॥

[८]

दव्वे हयमि लोओ पीडिज्जइ माणसेण दुक्खेण।
धण विरहिओ विसूरइ भुक्खा मरण च पावेइ॥८॥

लोक में द्रव्याहत मनुष्य दुःख से पीडित होता है। धन रहित भूख से दुःखी होकर मरण तक पा सकता है।

धन द्रव्य का इस लोक में माहात्म्य ऐसा छा गया।
जिसको मिला यह अर्थ मानो प्राण को ही पा गया॥
धन हीन और विपन्न होकर भूख की पीड़ा सहे।
मृत्यु पाता है तथा मरणान्त दुखों को वहे॥८॥

[९]

ए एण कारणेण जो जीव-दयालुओ जणो होइ।
सो न हरइ पर दव्व पर पीड परिहरतो ओ॥९॥

इन कारणो से जो मनुष्य जीवदया वाला होता है वह कभी पर द्रव्य हरण नही करता एव कभी दूसरे को पीड़ा नही पहुँचाता।

इस हेतु जो हैं शुद्ध सज्जन जीव करुणाकर महा।
पाप भीरु प्रशांत अरु शालीनता सद्गुण कहा॥
पर द्रव्य हारी पाप रत होते नहीं निश्चय कभी।
पीड़ा न पहुँचाते किसी को आत्म सम जान सभी॥९॥

[१०]

मव्वायरेण रक्खइ निययं दारं च नियय सत्तीए।
एएण कारणेणं दारं लोयाण सव्वस्सं ॥१०॥

सब लोग अपनी स्त्री की अपनी शक्ति के अनुसार रक्षा करते हैं। इसलिये कि स्त्री लोक मे सर्वस्व मानी जाती है।

संसार मे अर्द्धांगिनी को लोग सब कुछ मानते।
इस हेतु सब निज शक्तिभर रक्षार्थ आदर ठानते॥
कायर कहाता है वही नर जो न रक्षा कर सके।
धिक्कार उसकी शक्ति है जो नार परकीया तके॥१०॥

[११]

नय तह दूमेइ मणं धण च धन्नं जणस्स हीरंतं।
जह दूमिज्जइ लोओ निय दारे विहविज्जंते॥११॥

मनुष्य का धन धान्यादि हरण हो जाने से उसे उतना दुःख नही होता जितना अपनी स्त्री का विनाश होते देखकर होता है।

धन धान्य सत्ता राज्य वैभव आदि जो कोई हरे।
वह कष्ट होता किन्तु सो संयुक्त दुःख सहन करे॥
अपमान हो जब नारि का या विधुर ही होना पड़े।
निःसीम दुःख होता उसे दुःखार्त्त हो रोना पड़े॥११॥

[१२]

जो जीवदया जुत्तो परदारं सो न कहवि पत्थेइ।
नूणं दाराण कए जगो विढत्वं समज्जेइ॥१२॥

जो जीवदया युक्त है, वह परदारा गमन कभी नहीं करता (क्योंकि यह शील की बात है) निश्चय ही स्त्रियों के प्रति कामना के कारण मनुष्य भी विनाश प्राप्त करता है।

नारी जनों के हेतु मानव दुख नाना सह रहे।
कर्त्तव्यच्युत हो नष्ट हो लंकेश सम अपयश लहे॥
प्राणी दया से युक्त जो जन अपर कष्ट न दें कभी।
परदार गमन विभाव से विनिमुक्त हों सत्वर सभी ॥१२॥

[१३]

जारिसया उप्पज्जइ मह देहे वेयणा पहारेहिं।
तारिसया अन्नाणवि जीवाण मूढ़ देहेसु॥१३॥

जिस प्रकार प्रहार करने से अपनी देह में वेदना होती है, उसी प्रकार अन्य मूक प्राणियों के शरीर पर भी होती है।

जिस भाँति कोई क्रूर मानव चोट दे इस देह पर।
अनुभव यही आता हमें हो वेदनाएँ असह्यतर॥
त्यों इतर असमथ पशु पक्षी सभी अनुभव करें।
आत्मवत् सब सत्त्व हैं यह कथन सब चित में धरें॥१३॥

[१४]

जो देइ परे दुक्ख तं चिय सो लहइ लक्ख सय गुणियं।
बीयं जहा सुखित्ते वाविय बहु फल होइ ॥१४॥

जो पराये को दुःख देता है, वह करोड़ गुना दुःख प्राप्त करता है जैसे कि उपजाऊ खेत में बोया हुआ बीज विस्तृत फल देता है।

जो जीव देता है अपर को कष्ट मन वच काय से।
परिपाक जब उस कर्म का परिणाम भोगे हाय से॥
जो एक बीज बने विटप लाखों करोड परंपरा।
त्यों पाप बीज महा भयंकर फलित होते दुखकरा ॥१४॥

[१५]

सयलाणंपि नईणं इयही मुत्तूण नत्थि आहारो।
तह जीव दया ए विणा धम्मो चि न विज्जए लोए ॥१५॥

सभी नदियों के लिये समुद्र को छोडकर कोई आधार नही है। वैसे ही जीवदया के बिना लोक में कहीं धर्म नही है।

कल्लोलिनी सरिता चली गिरिशिखर से बह कर कहाँ।
नाना पथों से विचरती आधार मात्र उदधि जहाँ॥
त्यों धर्म सर्व प्रकार का आधार जीवदया कही।
उसके बिना नहिं धर्म धर्माभास सब जानो सही ॥१५॥

[१६]

इक्क च्चिय जीवदया जणेइ लोयंमि सयल सुक्खाइं,
जह सलिलं धरणि गयं निप्पायइ सयल सस्साइं ॥१६॥

एक जीवदया ही लोक में समस्त सुखो की देने वाली है। जैसे कि पृथ्वी में पानी जाकर समस्त शस्य (धान्यादि) उत्पन्न करता है।

सर्व सौख्य विधायिकी इक मात्र है इस लोक में।
श्री दया माता कही पावन हृदय में जो रमे॥
ज्यों नीर पृथ्वी उदर मे जा शस्य बहु उपजावती।
त्यों सर्व धर्म क्रियादि का प्रतिफल यही सरसावती ॥१६॥

[१७]

नय किंचि इह लोए जीयाहिं तो जियाण दइय पर।
अभय पयाणाउ जगे नहु अन्न उत्तम दाण ॥१७॥
इस लोक में जीवों के प्रति दया से बढ़कर कुछ भी नहीं है। अभय दान से उत्तम जगत में कोई अन्य दान नही है।

इस लोक में है सार शुभ उपदेश धर्माचरण का।
प्राणीदया का तत्व मण्डन रूप अशरण शरणता॥
जिस हृदय में हो प्रतिष्ठा वैर त्याग महानता।
सब दान में है श्रेष्ठ बोला पद अभय के दान का॥१७॥

[१८]

पाणि वह पायवाओ फलाइ कडुयाइ हुंति घोराइ।
नय कडुय बीय जाय दीसइ महुर फल लोए॥१८॥
प्राणि वध रूपी वृक्ष के फल अत्यन्त कटुक होते हैं। लोक में कभी कटुक बीज से मधुर फल उत्पन्न होते नही देखे जाते।

प्राणि वध के बीज का जब विटप विकसित हो रहा।
फल फूल होंगे अति कटुक परिणाम जीवन खो रहा॥
जैसा वपन हो क्षेत्र मे परिणाम लाभ निदान में।
क्या मधुर फल देखते कोई कटुक आधान मे॥१८॥

[१९]

निंवाउ न होइ गुडो उच्छू नय हुंति निंव गुलियाओ।
हिंसाए न होइ सुह नय दुक्खं अभय दाणेण॥१९॥

नीम से कभी गुड नहीं होता और इक्षु से कभी निंबोली नही होती। हिंसा में कभी सुख नही मिलता और अभयदान से कभी दु:ख नही होता।

वपन करके निंब तरु को गुड कहाँ निपजायगा।
ईख बो करके कभी निंनोलि फल क्यो पायगा॥
जीव-हिंसा-रक्त प्राणी को न सुख होगा कभी।
अभयदाता व्यक्ति को दु:ख वैर होगा ना कभी॥१६॥

[२०]

जो देइ अभयदाणं देइय सुक्खाउं सव्व जीवाण।
उत्तम ठाणंमि ठिओ सो भुंजइ उत्तमं सुक्खं॥२०॥

जो अभयदान देता है और सब जीवो को सुख पहुँचाता है वह उत्तम स्थान मे स्थित होकर उत्तम सुखो को भोगता हे।

मन वचन काया से अभय देना यही शुभ ध्यान है।
सर्व भूतों मे दया सम्पूर्ण सुख की खान है॥
स्वर्गापवर्ग मनुष्य गति में उच्च पद पाता वही।
सुख भोग उत्तम आत्म सुख-भोक्ता वही होता सही॥२०॥

[२१]

लोभाओ आरंभो आरभाउय होइ पाणि-वहो।
लोभारंभ नियत्ते नवरं अह होइ जीवदया॥२१॥

लोभ से आरभ, आरभ से प्राणिवध होता है। लोभ एव आरभ से निवृत्त होने पर केवल जीवदया ही रह जाती है।

पाप का जो बाप है यह लोभ इसका नाम है
आरम्भ से हो प्राणिवध यह परपर अभिधान है ॥
लोभ अरु आरम्भ से निवृत्ति पाओगे जभी।
केवल अहिंसा भगवती की साधना होगी तभी ॥२१॥

[७]

तो जाणिऊण एय मा मुज्झह अत्तणो सकज्जेसु।
स न सुह कारणाण पिय ता कुणह जीवदय ॥२२॥

ऐसा जानकर आत्मिक सत्काय में प्रमाद मत करो। सब सुखों को उत्पन्न करने वाली जीवदया है, हे प्रिय। यही करो।

यह ज्ञात करके बन्धु तुम सुस्पष्ट निर्मल चित्त दे।
व्यामोह तज संलग्न हो सत्कार्य आत्मिक वित्त के ॥
सद् सौख्यदात्री भगवती प्राणीदया धारण करो।
देशत अरु सर्वत है मोक्ष का कारण वरो। ॥२७॥

[२३]

इय जाणिऊण एय वीमसह अत्तणो पयत्तेण।
जो धम्माओ चुक्को सो चुक्को सव्व सुक्खाण ॥२३॥

जो धम से भ्रष्ट हुआ वह सब सुखों से भ्रष्ट हो गया। ऐसा जानकर प्रयत्न पूवक आ म चिन्तन में लगो।

यह ज्ञात करके तत्त्वत सुविचार विमर्श सतत करो।
पुरुषार्थ आत्म प्रयत्न करके धर्म मारग चित्त धरो।
जो सत्त्वहीन कुशील हो च्युत धर्म-पथ से हो गया।
सब ही सुखों को दे तिलांजलि और नर भव खो गया ॥२॥

[२४]

धम्मं करेह तुरियं धम्मेण य हुँति सव्व सुक्खाइं।
जीवदया मूलेणं पंचिंदिय निग्गहेणं च ॥२४॥

दान, शील, तप और भावमय चतुर्विध धर्म करो। जीवदयामूल और पचेन्द्रिय निग्रह से सब सुख होंगे।

तप, दान शील स्वभाव युत सद्धर्म का आचार है।
व्यवहार कर उनका सतत जो सर्व सुख का द्वार है॥
धर्म की जड़ है अहिंसा करो सिंचन प्रेम से।
पचेन्द्रियों को वश करो रक्खो सदा ही नेम से॥२४॥

[२५]

ज नाम किंचि दुक्ख नारय तिरियाण तहय मणुयाणं।
तं सव्व पावेण तम्हा पावं विवज्जेहा ॥२५॥

कुछ भी दु ख जो नारक, तिर्यंच और मनुष्यो को दिखायी देता है, वह सब हिंसा रूप पाप से होता हैं इसलिये यह पाप मत करो।

सप्त नारक और तिर्यक् की विविधता मे रहा।
और नरभव योनि मे जो दुःख जाता है सहा॥
सब पाप का परिणाम है सौ बात की यह बात है।
वर्जित करो सब पापकारी कार्य जो दिन रात है॥२५॥

[२६]

नर नरवई देवाणं जं सुक्खं सव्व उत्तमं होई।
तं धम्मेण विढप्पइ तम्हा धम्मं सया कुणह।॥२६॥

मनुष्य, राजा और देवों को जो सर्वोत्तम सुख होता है, वह सब (दया रूप) धर्म से ही मिलता है, अत सर्वदा यही धर्म करो।

जो मनुज देवादि गति म उच्चता संप्राप्त है।
सुख शांति साता युक्त ऋद्धि समृद्धि से परिव्याप्त है॥
उपलब्धि होती है निकेवल धर्म के आचार से।
करते रहो तुम सर्वदा ही धर्म शुद्ध विचार से॥२६॥

[२७]

जाणइ जणो मरिज्जइ पिच्छइ लोयं मरतय अन्न।
नय कोइ जए अमरो कह तहवि न आयरो धम्मे॥ ७॥

मनुष्य जानता है कि मरना है और दूसरो को मरते हुए देखता है। जब कोई मरे बिना नही रहता तो फिर धर्माचरण क्यो नही करता?

नर जानता यह है कि निश्चय जन्म ही मरता सदा।
प्रत्यक्ष जाते देखता है धूल में मिलता यदा॥
जब नहीं कोई अमर है गर्व इसका क्यों करे?
कर धर्म ही में सतत उद्यम ताकि काल स्वय मरे॥२७॥

[२८]

उच्छिन्ना किंतु जरा नट्ठा रोगाय किं मय मरणं।
ठइय च नरयदार जेण जणो न कुणए धम्म॥२८॥

क्या हम वृद्धावस्था को आते हुए रोक सके? क्या हम रोगो का निवारण कर सके? और क्या मृत्यु को मार सके। यदि ऐसा नही कर सके तो निश्चय है कि जीतेजी स्वभाव में स्थिर हुए बिना नरक द्वार नियत है।

हम जरा मुक्त न हो सके रोगादि को न मिटा सके।
निज धर्म में हो स्थिर मरण भय को न हाय हटा सके॥
नरक निश्चित है हमारे पाप जीवन के लिये।
आत्मभाव प्रभाव से आनन्द होता है हिये।॥२८॥

[२६]

दूसह दुह संतावं ताव न पाविंति जीव ससारे।
जाव न सुह सत्ताणं सत्ताणं जंति सम भावं ॥२६॥

जब तक समभाव पूर्वक सब जीवो के सुख का विचार नही करता तब तक वह दु.ख सन्ताप से निवृत्त नही हो सकता।

सत्त्वेपु मैत्री का न जिसको भाव जीवन मे हुआ।
हनन कर सब जीव को मम भाव से भव भव मुआ॥
समभाव से सम्पन्न हो सब जीव रक्षण ठानता।
दुसह दु खों से विरत हो सिद्धि साध्य पिछानता॥२६॥

[३०]

धम्मो अत्थो कामो अन्नो जे एव माइया भावा।
हरउ हरंतो जीय अभयं दिंतो नरो देइ॥३०॥

धर्म, अर्थ, काम इत्यादि अन्य भी जो पदार्थ हैं उन्हें प्राण हरण करनेवाला नष्ट कर देता है और अभयदान देता हुआ दता है (प्राप्त कर लेता है)।

जो अभय दाता सभी का अर्थ पाता है सभी।
धर्म मोक्ष सुकाम से सम्पन्न होता नर तभी॥

जीव हर्ता अन्य का खोता सभी पुरुषार्थ है।
एक यह उपदेश केवल शुद्ध आत्म हितार्थ है ॥३०॥

[३१]

सो दयो सो तवसी सोह सुही पण्डिओ य सो चेव।
जो सयल सुक्ख बीय जीवदय कुणइ खंतिं च ॥३१॥

जो दयावान है वही तपस्वी, वही सुखी और वही पंडित है, जो समस्त सुखो के बीजभूत जीवदया को क्षान्तिपूर्वक पालन करता है।

जो है दयाधारक पुरुष वह ही तपस्वी जानिये।
पंडित विचक्षण भी वही जो सदय निश्चय मानिये ॥
पालन करे जो क्षान्ति पूर्वक सर्व भूतों में दया।
सुख बीज सुखदायक सदा माता अहिंसा सद्दया ॥३१॥

[३२]

किं पढिएण सुएण व वक्खाणियएण काइ किरतेण।
जत्थ न विज्जइ एयं परस्स पीडा न कायव्वा ॥३२॥

पराये को पीड़ित नही करना, यदि इतना भी ज्ञान नही है तो पढ़ने से क्या? सुनने से क्या? और व्याख्यान आदि करने में क्या रखा है?

पठन पाठन और श्रोता वक्तृता में क्या रखा।
व्याख्यान आदि सब कलाए व्यर्थ तुम जानो सखा ॥
पर पीड करना पाप है इतना न जिसको ज्ञान है।
वह बाल जीवात्मा महा मिथ्यात्वमय नादान है ॥३२॥

[३३]

जो धम्म कुणइ जणो पुज्जिज्जइसामि उच्च लोएणं।
दोसो पसुव्व जहा परिभूओ अत्थ तल्लिच्छो ।।३३।।

जो मनुष्य धर्म करता है, समर्थ और बडे लोगो द्वारा भी पूजा जाता है और अर्थ मे तत्पर लोभी दोषी पशु की भाँति तिरस्कृत होता है।

सतत ही संलग्न है जो व्यक्ति धर्माचार मे।
नरदेव नरपति पूज्य होता वही इस ससार मे।
अर्थ मे तल्लीन लोभी दोष युक्त कहात है।
पशुवत तिरस्कृत हो कथचित् भी नहीं शरमात है ।।३३।।

[३४]

मा कीरउ पाणिवहो मा जंपह मूढ अलिय वयणाइं।
मा हरह पर धणाइ मा परदारे मइं कुणह।३४।।

मत कर। प्राणिवध मत कर। झूठ वचन मत बोल। पराया धन मत हर। तथा परनारी गमन मे मति मत कर। (क्योकि सब में शिवा)।

रे मूर्ख मत प्रस्तुत रहो प्राणी-वधादिक पाप मे।
मुख से न मिथ्या वचन बोलो रखो निष्ठा साच मे।।
परधन हरण से दूर रह। जो चाहता कल्याण है।
माता गिनो परदार को इसमे बडा सम्मान है ।।३४।।

[३५]

मरणे य भणे तह परियणं य को कुणइ मासया बुद्धी।
अणुधावन्ति कुडेण रोगाय जराय मच्चुय ।।३५।।

स्वजन, परिजन और धनादि में कौन शाश्वत बुद्धि करे ? जब कि प्रत्यक्ष ही जरा और मृत्यु उन्हें छेदने के लिये दौड़ रहे हैं।

ये स्वजन परिजन मित्र आदिक आज हैं तो कल नहीं।
धन धान्य या घर बार सब होते नहीं अविचल कहीं॥
कौन शाश्वत बुद्धि धरता जो क्षणिक महमान है।
जरा रोग कृतान्त करता नित्य सर सन्धान है॥३५॥

[३६]

परमेसर माईया ता पिच्छह जाव डुंब चंडाला।
कस्स न जायइ दुक्ख सारीरं माणसं चेव॥३६॥

परम समर्थ पुरुष से लेकर डोम, चाण्डाल आदि मनुष्यों को पूछ लो, शारीरिक और मानसिक आधि व्याधि से कौन पीड़ित नहीं है ?

चक्रवर्त्ती वासुदेव सुशक्ति धर भूपाल भी।
समृद्धिशाली निम्न गोत्री डोम या चांडाल भी॥
प्रिय वियोग शरीर दुःख से बच नहीं सकता कहीं।
इसलिये निज सुख रमण अतिरिक्त कोई पथ नहीं॥३६॥

[३७]

अड्ढा भोगा सत्ता दुग्गय पुण पुट्ट भरण तल्लिच्छा।
तो वि न कुणंति धम्मं कह पुण सुक्खं जए होइ॥३७॥

संपन्नजन भोगासक्त, दुर्गत-दारिद्र्यवश पेट भरने में तत्पर हैं। फिर भी दयामय धर्म नहीं करते, फिर उन्हें सुख कहाँ से हो ?

आढ्यता की प्राप्ति कर आसक्त भोगों में सदा।
दारिद्र्य दुख या जीविका भय से न मुक्त हुए कदा॥

कर विषय इच्छा जन्म खोया और तृष्णा बढ़ रही।
फिर सौख्य कैसे पायगा सद्धर्म बिन निश्चय सही ॥३७॥

[३८]

दियहं करेह कम्मं दारिद्द हएहिं पुट्ट भरणत्थं।
रयणीसु णेय निद्दा चिंताए धम्म रहियाणं ॥३८॥

दारिद्रय के मारे पेट भरने के लिए दिन भर काम करता है, और धर्म-रहित को रात्रि में भी चिन्ता के मारे निद्रा नहीं आती।

लाया नहीं है पूर्व के सत्कर्म अपने साथ में।
तो पेट भरने के लिये कैसे बचेगा हाथ में?
दिवस भर है कष्ट करता कठिन श्रम बिन धर्म के।
रात में निद्रा न पाता फल मिले दुष्कर्म के ॥३८॥

[३९]

मणि धण कणग समिद्धा धन्ना भुजंति केइ जे भोगा।
ते आसाइय सुक्खं पुणोवि धम्मं चिय कुणति ॥३९॥

कई लोग मणि, कचन और धन समृद्धि से सुख भोगते हैं। सुखास्वादन करके भी जो दयारूप धर्म करते हैं, वे धन्य हैं।

मणि-रत्न और सुवर्ण धन बहु धान्य के भण्डार है।
समृद्धिशाली भोग सामग्री का बड़ा विस्तार है॥
वे भोगते सुकृत कमाई पुन. धर्म समाचरें।
है धन्य वे कृतपुण्य हित सुख मोक्ष का ही पद वरें ॥३९॥

[४०]

जे पुण जम्म दरिद्दा दुह्यिा परपेस रोग मग्घाया।
काऊण ते वि धम्म दूरं दुक्खाण वच्चति ॥४०॥

फिर जो जन्म दरिद्री दुःखी पराये नोकर व रोगाक्रान्त हैं, वे धम करके दुःखों को दूर क्यो न करें ? (अर्थात् अवश्य करते हैं)

दुष्कृत्य उदय प्रभाव से निर्धन बने होकर दुःखी।
पर मुखापेक्षी तथा हैं रोगग्रस्त चतुमुखो॥
फिर भी अगर सन्तोष पूर्वक धर्म में लग जायेंगे।
कर नष्ट दुःख परम्परा शाश्वत सुखों को पायेंगे ॥४०॥

[४१]

जो कुणइ मणे खती जीवदया मद्दव जुव भाव।
सो पावइ निव्वाण नय इंदिय लपडो लोओ ॥४१॥

जो मन में क्षांति, मार्दवयुक्त भावों से जीवों पर दया करते हैं, वे ही निर्वाण लाभ करते हैं पर इन्द्रिय लम्पट लोग नही।

जो शिष्टजन निज चित्त में शुभ क्षांति को धारण करें।
मार्दव तथा आर्जव सहित सब प्राणि पर करुणा धरें॥
निर्वाण सुख की वे महात्मा प्राप्ति सत्वर ही करें।
शम-दम तितिक्षा हीन नर शिवसुन्दरी कैसे वरें ? ॥४०॥

[४२]

जो पहरइ जीवाणं पहरइ सो अत्तणो सगत्तेसु।
अप्पाणं जो वइरी दुक्ख सहस्साण सो भागी ॥४२॥

जो जीवों—प्राणियों पर प्रहार करता है, वह अपनी ही आत्मा पर भयंकर प्रहार करता है। वह हजारों दुःखों का भाजन होता है, अतः वह अपनी आत्मा का स्वयं ही शत्रु है।

जो अन्य प्राणी पर करें निज अस्त्र शस्त्र प्रहार को।
वे कर रहे नादान अपने आप के संहार को॥
पर दुःखकारी आप ही तो दुःख पायेंगे सदा।
पर-शत्रु अपने शत्रु हैं मन दुःख भारों से लदा॥४२॥

[४३]

जो कुणइ जणो धम्मं अप्पाणं सो सया सुहं कुणइ।
संचय परो य सुच्चिय सचइ सुह संचयं जेण॥४३॥

जो मनुष्य धर्म करता है, वह अपने को ही सदा सुखी करता है। संचय-शील वही है जो सुख सचित करता है।

जो नरोत्तम धर्मरत रहता परम उपकार में।
उपकार अपना ही करे वह हो सुखी संसार में॥
पर हित सदा सचय करें वे शुद्ध संचयकार है।
वे स्वर्ग के स्वामी बनें आनन्द के आगार हैं॥४३॥

[४४]

जो देइ अभयदाणं सो सुक्ख सयाइं अप्पणो देइ।
जेण न पीडइ परं तेण न दुक्खं पुणो तस्स॥४४॥

जो जीवों को अभयदान देता है, वह सर्वदा अपने को ही सुख देता है। जो पराये को पीडित नही करता उसे फिर स्वयं दुःख नही होता।

देता रहे जो प्राणियों को अभयदान प्रधान है।
वह शान्ति अपने आप को ही दे रहा असमान है॥
जो कभी करता नहीं पर पीड़नादिक पाप को।
वह भी अभय है सर्वदा डाले न दुःख में आपको॥४४॥

[४५]

जह देउलस्स पीढो खंधो रुक्खस्स होइ आहारो।
तह एसा जीव दया आहारो होइ धम्मस्स॥४५॥

जैसे देवालय के लिए देव पीठ और वृक्ष का आधार स्कन्ध है, वैसे ही यह जीवदया धर्म का आधार है।

देव मन्दिर मध्य जैसे वेदिका ही सार है।
स्कन्ध ही होता सदा तरुराजि का आधार है॥
त्यों धर्म का आधार मानो प्राणी संयम या दया।
इसके बिना नर देह पाकर व्यर्थ ही जीवन गया॥४५॥

[४६]

जो होइ जाण जोगो तेल्लुके उत्तमाण सुक्खाण।
सो एय जीवदया पडिवज्जइ सव्व भावेण॥४६॥

तीनो लोक में उत्तम सुख का स्थान यदि कुछ जानने योग्य है तो यह कि जीव-दया को सर्वतोभाव से स्वीकार करना।

त्रैलोक्य में उत्तम सुखों का एक ही कारण सदा।
मन वचन काया योग में हो प्राणिरक्षण सर्वथा॥
हिंसा कही है दुःखवर्द्धक यह अटल सिद्धान्त है।
जो दयामय धर्म माने दृष्टि वह निर्भ्रान्त है॥४६॥

[४७]

जीवदय सच्च वयणं परधण परिवज्जणं सुसीलत्तं।
खंती पंचिंदिय निग्गहोय धम्मो(दुम्म)स्स मूलाइं ॥४७॥

सत्य वचन, पर द्रव्य त्याग, सुशीलत्व, क्षाति तथा पचेन्द्रिय-निग्रह सहित जीव-दया धर्म रूपी वृक्ष के मूल हैं।

प्राणीदया, सच्चा वचन, पर द्रव्य परिवर्जक कहा।
सत् शील व्रत अरु क्षान्ति भी है पंच इन्द्रिय निग्रहा॥
ये धर्म-रूपी वृक्ष के हैं मूल अंग कहे गये।
इनको सदा धारण करें वे सौख्य पाते नित नये॥४७॥

[४८]

भय-रोग-सोग जर-मरण गब्भ दुव्विसह वेयणाइन्नं।
इट्ठ वियोगासारं किं न मुणह एरिसं लोयं॥४८॥

भय, रोग, शोक, बुढापा, मृत्यु, गर्भावासादि की दुस्सह वेदना और इष्ट वियोगादि वाला यह असार ससार है, ऐसा क्यो नही मानते ?

अष्ट-भय-प्रद रोग नाना शोकमय संसार है।
गर्भ, जन्म, जरा - मरणमय दुःख अपरम्पार है॥
समता न हो संसार मे संसार होता भार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है॥४८॥

[४९]

बालत्तणए तह जुव्वणेय मज्झिम वए य थेरत्ते।
मरण भएणुव्विग्गं किं न मुणह एरिसं लोयं॥४९॥

बाल्यकाल, यौवन, प्रौढावस्था और वृद्धावस्था में सर्वत्र यह लोक मरण भयोद्वेग वाला है, ऐसा क्यों नहीं मानते ?

यह काल बाल युवा अवस्था को न कुछ भी मानता।
प्रौढ हो या वृद्ध हो दारिद्र्य हो कि महानता॥
मरणभय उद्वेग, सुख की भ्रान्ति का विस्तार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दु:खागार है ॥४९॥

[५०]

दुब्भिक्ख डमर तक्कर दुह सय दुमिज्जमाण दुमणस्स।
इट्ठ वियोगासार किं न मुणह एरिस लोय ॥५०॥

दुर्भिक्ष, डमर, तस्कर दौर्मनस्यादि सैकड़ो दु:खो से दु:खी इष्ट वियोगादि के कारणभूत इस ससार को असार क्यो नही मानते ?

दुर्भिक्ष हो जब देश में सब जीव दुःख सदा सहें।
डाकू लुटेरे चोर तस्कर रोग भय क्या-क्या कहें॥
जो उपाय करें सभी होते यहाँ नि:सार है।
क्यों नहीं तुम मानते ससार दु:खागार है ॥५०॥

[५१]

कुल बालियाए रहत्तणाइ ताहण्ण एव दोहग्ग।
पिय विप्पओग दुहिय किं न मुणह एरिस लोय। ५१॥

प्रिय के वियोग से तारुण्य में ही दुर्भाग्य और बाल वैधव्य स अनेक कुलीन बालाएँ पीड़ित हैं फिर ऐसे ससार को दु:ख-पूर्ण क्यो नही मानते ?

कुलवान बाला को यहाँ वैधव्य अति दुखकार है।
तारुण्य में दुर्भाग्य दुःख सहना महा असिधार है।
प्रिय विप्रयोग अनिष्ट योगज कष्ट का विस्तार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दु:खागार है ।५१॥

[५२]

राय भर गरुय पीडिय कालिय वड्ढंत जणिय संतावं।
दुहियं किलेस बहुलं किं न मुणह एरिसं लोयं। ५२।

राज्य के असह्य गुरुतर कर भार की पीडा से वढता हुआ जन सताप जन्य दुःख वाले लोक को क्लेश वहुल क्यों नहो मानते ?

राज्य सत्ता के करो का असह गुरुतर भार है।
बढ रहा सन्ताप जनता का कहाँ निस्तार है।
भूख भी मिटती नहीं दुष्कर्म फल संचार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दु:खागार है ॥५२॥

[५३]

पर कम्मेणक्कंतं निच्चं चिय पुट्ट भरण तल्लिच्छं।
धम्म सुइ विप्पणट्ठं किं न मुणह एरिसं लोयं ॥५३॥

पराया काम करते हुए नित्य ही पेट भरने में तल्लीन, धार्मिक पवित्रता या श्रुति से रहित ऐसा लोक है, यह क्यो नही मानते ?

उदर पोषण के लिये करते अधर्मी चाकरी।
पेट भी भरता नहीं हिंसा अधिकतम आचरी ॥
पर काज करते रात दिन श्रुति को किया बेकार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है ॥५३॥

[५४]

कामेण अत्थ पर मग्गेण तह चेव दाण गहणेण।
निह पि अळहमाणं किं न मुणह परिस लोय ॥५४॥

अर्थ-कामना से पीड़ित हो मंगतापन स्वीकार करने में कितना दुःख होता है ? फिर दान लेते समय कितनी लज्जा उत्पन्न होती है और अगर नही मिला तो फिर दुःख का पूछना ही क्या ? इस प्रकार का संसार क्यों नही मानते ?

कामना हो अर्थ की उस हेतु करते याचना।
मांगने पर लाज छूटी बिन मिले दुःख भाजना॥
मांगने से मौत अच्छी क्या करे लाचार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है। ५४॥

[५५]

खण रुट्ठ खण तुट्ठ खण मित्त चेवन्नूण वेळविय
खण दिट्ठ नट्ठ सुक्ख किं न मुणह परिस लोय। ५५॥

क्षण में रुष्ट, क्षण में तुष्ट, क्षण में मैत्री, क्षण में प्रतारणा, क्षण में देखते देखते नष्ट होता हुआ सुख, क्यो नहीं मानते कि यह लोक ऐसा ही है।

क्षण रुष्ट क्षण में तुष्ट हों ऐसे विलक्षण लोक हैं।
क्षण मित्रता क्षण शत्रुता क्षण शोक हों कि अशोक हैं॥
भोगते ही भोगते सुख भी बना निःसार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है। ५५॥

[५६]

सारीर माणसेहिं य दुक्खेहिं समुत्थयं निराणंदं।
अप्प सुह बहु दुक्खं किं न मुणह एरिसं लोयं ॥५६॥

शारीरिक या मानसिक दुःखों से आच्छादित, निरानद, अल्प सुख और बहु दुःखमय यह लोक है ऐसा क्यो नही मानते ?

देह में दुष्कमे दण्डित कष्ट का परिवार है।
आनन्द इच्छा भी यहाँ पर स्वयं बंधाधार है॥
अल्प सुख बहु पाप का फल दे रहा धिक्कार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है॥५६॥

[५७]

दुज्जिमिय दुन्नियत्थं दुज्जण दुव्वयण दूमिय सरीरं।
चिंता दूमिय मणसं किं न मुणह एरिसं लोयं॥५७॥

दुर्नीत से प्राप्त दुष्ट भोजन के लिए दुर्जन के दुर्वचनो से उत्तप्त शरीर, चिन्ता से दु'खी मनवाला लोक है, ऐसा क्यों नही मानते ?

इस पेट पापी हेतु सहते दुर्जनों के बोल है।
तो भी न भरता है यहाँ पर हाय कैसा ढोल है॥
पेट भरता किन्तु पेटी भरण चिन्ता भार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है॥५७।

[५८]

चण्डाल डुब मोरट्ठिएहिं सव्वाइ अहम जाईहिं।
मिच्छे हिय पज्जतं किं न मुणह एरिसं लोयं॥५८॥

यहाँ चाण्डाल, डोम, श्वपच आदि सभी अधम जातियों से भरे हुए मिथ्या हृदय वाले लोक हैं, ऐसा क्यों नहीं मानते ?

चाण्डाल डुंबादिक अधम जन सदा हिंसा रक्त हैं।
मद्य आदिक सप्त व्यसनों में परम आसक्त हैं॥
हृदय तम मिथ्यात्व छाया तमतमा का द्वार है।
क्यों नहीं तुम मानते ससार दुःखागार है॥५८॥

[५९]

जम्मण मरण रहट्टे अट्ठसु पहरेसु घडिय दायडए।
घडिमाल ववहस कि न मुणह परिस लोय॥५९॥

आठो पहर जन्म मरण का चक्र अरहट के घटमाल की भाँति चलने वाला लोक है, ऐसा क्यो नही मानते ?

कूप की घटमाल भरती रिक्त होती ज्यों बहे।
त्यों रात दिन ससार में हैं जन्म लेकर मर रहे।
सुख कहीं रोदन कहीं यों बृहत् नाट्यागार है।
क्यों नही तुम मानते ससार दुःखागार है॥५९॥

[६०]

वासा रत्ते विज्जुलय विद्दु य सिसिर सीय सलिन्न।
गिम्हिवि धम्मनडिय कि न मुणह परिस लोय॥६०॥

वर्षा ऋतु में बिजली से अभिभूत शिशिर में शीत से संयुक्त ग्रीष्म ऋतु में घाम से पीड़ित विडम्बित लोक है ऐसा क्यो नही मानते ?

बरसात में चमकें कडक कर बिजलियाँ गर्जा करें।
शिशिर मे शरदी अधिक तन काँपते थर-थर मरें॥
ग्रीष्म मे सब ताल सूखे देह घाम - प्रसार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है॥६०।

[६१]

पर पेस दास दुग्गय लेहारिय लोह लोलया बहुलं।
पुट्टलिया सय दुहियं किं न मुणह एरिसं लोयं॥६१॥

पराधीनता से दुर्गत और वहुतसे लेखाचार्य (उपाध्याय) भी लोभ लोलुप लपट और पेट के लिए सदा दुखी लोक है, ऐसा क्यो नही मानते ?

दास आजीवन बने पशु भाँति पीडाऐं सहें।
उदर भरने को तरसते अर्थ लोलुप जन रहें॥
लेखनी के भी धनी इस भाल लेख शिकार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दु खागार है॥६१॥

[६२]

कण्णुट्ठ छिन्न वयणं छिन्नं तह नासियाए अंगं च।
कोढेण भिणभिणंत किं न मुणह एरिसं लोयं॥६२॥

कुष्ट रोग से कान ओष्ट और मुख छिन्न हो गया, वैसे ही नाक और दूसरे अग भी छिन्न होकर मक्खियाँ भिनभिनाती हैं, ऐसा लोक है, क्यो नही मानते ?

कर्ण मुख ओष्टादि जिनके गलित सारे अग हैं।
रक्त रस्सी चिक-चिकाता कुष्ट इन्द्रिय भंग है

मक्खियों की भिनभिनाहट का बना परिवार है।
क्यों नही तुम मानते संसार दुःखागार है ॥६२॥

[६३]

काऊण पाव कम्म गर्तु नरएसु तह्य तिरिएसु।
दुक्खाइ अणुहवत किं न मुणह एरिस लोय ॥६३॥

पाप कर्म करके नरक और तिर्यंच गति में जाते तथा दुःखो का अनु-भव करते देख कर भी लोक के इस स्वरूप को क्यों नहीं मानते ?

पाप कार्यासक्त होकर विषयरत होते यदा।
नरक तिर्यक योनियों में दुर्दशा भोग सदा॥
प्रत्यक्ष भूख तृषादि वध बन्धन तथा अतिभार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है॥६३॥

[६४]

पक्खि सिरीसिव जलयर चउप्पय तुसुन्न वह समुज्जत।
मणुएसु विहम्मत किं न मुणह एरिस लोय ॥६४॥

पक्षी, सरीसृप, जलचर चतुष्पदादि का वध होता है तथा मनुष्य भी नष्ट हो रहे हैं। ऐसा लोक है क्यों नही मानते।

क्रौंच, तीतर, बाज, खेचर नाम से विख्यात हैं।
साँप अजगर गोह सरिसृप और चौपद जाति हैं॥
प्रत्यक्ष वध करते मनुज नरमेध का विस्तार है।
क्यों नही तुम मानते संसार दुःखागार है॥६४॥

[६५]

खर करह महिय सविस तुरय वडव तह वेसराइ वा मीसं।
गुरु भार वहण खिन्नं किं न मुणइ एरिसं लोयं ॥६५॥

गधा, ऊँट, भैंसा, पाडा, घोडा, घोड़ी तथा खच्चर या मिश्र गुरुतर भार वहन करने से खिन्न ऐसा लोक है, यह क्यों नही मानते ?

शकट में जुत बैल भंसा अश्व आदिक दु.ख सहें।
ऊँट गर्दभ और खच्चर भार गुरुतर हो वहें॥
खिन्न हो अत्यन्त परवश चाबुकों की मार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दु.खागार है॥६५॥

[६६]

पुढवि जल-जलण मारुय तण रुक्ख वणस्सईहिं विविहाहिं
एएसु अपज्जतं किं न मुणइ एरिसं लोय ॥६६॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और तृण वृक्षादि विविध वनस्पति मे अपर्याप्त उपजते हैं, ऐसा संसार है क्यों नही मानते ?

स्वर्ण मिट्टी प्रस्तरादिक पृथ्वि जल की काय है।
अग्नि वायु हरित् वनस्पति विविध बहु वनराय है॥
सब पुण्यहीन निगोद योनि अनन्त अपरम्पार है।
क्यों नहीं तुम मानते संसार दुःखागार है॥६६॥

[६७]

एवं जीवदया विरहियस्स जीवस्स मूढ हिययस्स।
किं अत्थि किंचि सुक्खं तिल तुस मित्तंपि संसारे॥६७॥

इस प्रकार जीवदया रहित मूढ हृदय जीव को क्या तिल और तुष मात्र किंचित् भी ससार में कही सुख है ?

इस तरह यह मूढ मति प्राणी भ्रमित ससार में।
ज्ञान और दया रहित दुष्कर्म के व्यवहार में॥
तिल मात्र सुख मिलता नहीं तृष्णा विषय के जाल में।
दु:ख ही केवल सहा है आर्त्त मन बेहाल में॥६७॥

[६८]

जज्जर जज्जरिय सकज्जलाइ दरभग्ग भित्ति भागाइ।
मइहाइ मगुलाइ गेहाइ तमणि रहियाइ॥६८॥

जीर्ण होने से जर्जरित, कल्मष से काले कलूटे, दीवाल व दरवाजे जिसके टूटे फूटे हैं ऐसे छोटे व खराब घरों में बर्तन भाँडों से रहित—

धूम्र से काला कलूटा जर्जरित है सर्वथा।
द्वार भी टूटे हुए हैं भग्न दीवाल तथा।
मलिनतम गन्दे घरों में वसन बासन भी नहीं।
परिणाम हैं उस पाप के पाली न जीवदया सही॥६८॥

[६९]

स दियहं दारुण दूसहेहिं दारिद्द दोस दुहिएहिं।
सी उण्ह-वाय परिसोसिएहिं कीरंति कम्माइ॥६९॥

जो दारुण, दुस्सह दारिद्रय दोष से दु:खी शीत तथा गरम वायु से परिशोषित, काम करते हुए दिन बिताते हैं।

दारुण दु:खों में बीतते दिन कठिन और असह्य भी।
दारिद्रता दूषण महा चिन्ता चिता सी जल रही॥

शीत मे नहिं वस्त्र लू में तीव्र परिशोपित रहे।
उदर पोषण हेतु भ्रमता दु:ख भीपणतम सहे ॥६९॥

[७०]

जं पर घर पेसण कारएहिं सीयल य विरस रुक्खाइं।
भुंजंति अचेला भोयणाइं परिभूय लद्धाइं ॥७०॥

जो पराये घर पीसना आदि कर के ठण्डा, निरस, रूखा-सूखा असमय भोजन करते हैं और वह भी तिरस्कार पूर्वक प्राप्त होता है।

पीस चक्की पर घरों मे कठिन धन्धे भी किये।
समय असमय शुष्क रूखा खाय कैसे भी जिये॥
मान या अपमान भोगे जन्म ढो करके मरे।
परिणाम हैं उस पाप के पाली न जीवदया अरे। ॥७०॥

[७१]

ज दूहव दूसह दुक्कलत्त निच्चं च कलहसीलेहिं।
तेहिं समं चिय कालो निज्जइ अच्चत दुहिएहिं ॥७१॥

जो दुर्भग, दुस्सह और नित्य ही कलहकारिणी दुष्कलत्र (स्त्री) है, उसके साथ अत्यन्त दु:ख से काल व्यतीत करना पडता है।

दु:शील वाली कर्कशा नारी मिली दुर्भाग्य से।
क्लेश करती ही रहे जो दूर हो अनुराग से॥
जीवन बिताना साथ उसके दुःखकारी है महा।
पाप का परिणाम है यह जाय भी किससे कहा ? ॥७१॥

[७२]

ज मइलिय चीर नियसणेहिं सिर लुक्क फुट्ट चलणेहिं।
परिसक्किज्जइ दीण आहारं पत्थमाणेहिं ॥७२॥

जो मलिन चीर वस्त्र से सिर ढँके, फटे पाँवो से दैन्यपूर्वक आहार के लिए प्राथना करती हुई अस कृत होती है।

मैले कुचैले चीर कन्था युक्त जर्जर हो रहे।
सिर देह रहते हैं उघाड़ नागरिकता खो रहे॥
फटे नगे पाँव से जा दीनता यों याचती।
अधन्या हो हीनपुण्या द्वार - द्वारे प्रार्थती ॥७२॥

[७३]

ज खास सोस सिर वेयणाहिं खय कोड चक्खु रोगेहिं।
अट्ठी भगे हिय वेयणाओ विविहाउ पाविति ॥७३॥

जो खास, श्वास शिरपीड़ा, क्षय, कुष्ट, चक्षुरोग, हड्डी टूटने एव हृदय रोगादि से विविध वेदना पावे हैं।

क्षय कुष्ठ सिर की वेदना या चक्षु आदिक रोग हैं।
अस्थि टूटी हृदय रोगी कर्म के सब भोग हैं॥
रोम प्रति हैं रोग छाई प्रगट हों असमाधियें।
धन्धन समय चेते नही रोवे उदित अब व्याधियें॥७३॥

[७४]

ज इट्ठ विओगाक्कदणेहिं दुव्वयण दूमिय मणेहिं।
पिज्जइ लोणसु जल दुह मसम उन्नहतेहिं ॥७४॥

जो दुर्वचनों से दुःखित मन से इष्टवियोग के आक्रन्दन द्वारा अश्रुओ का खारा जल पीते हुए असह्य दुःख सहन करते हैं।

दुर्योग इष्ट-वियोग ही मिलते कुकर्माधीन हो।
दुर्वचन से दुःखी हृदय आक्रन्द करते दीन हो॥
अश्रुजल खारा पियें वे अन्तरात्मा में दहें।
वचित अहिंसा साधना से कर्म फल दारुण सहें॥७४॥

[७५]

जं काणा खोडा वामणाय तह चेव रूव परिहीणा।
उप्पज्जंति अणंता भोगेहिं विवज्जिया पुरिसा॥७५॥

जो काना, खोडा (लगडा), वामन और रूपहीन अनन्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सुख-भोग से विवर्जित हैं।

काणे कुढगे अन्ध लँगड़े और बौने बन रहे।
हीनाङ्ग ऐसे है असंख्यों कौन कैसे क्या कहे ?॥
विविध पाप प्रधान जीवन योनियों की गति सहे।
वंचित अहिंसा साधना से कर्म फल दारुण सहे॥७५॥

[७६]

इय जं पाविंति दुह सयाइ जण हियय सोस जणयाइं।
तं जीवदयाए विणा पावाण वियंभियं एयं॥७६॥

इस प्रकार मनुष्य सैकडो हृदय-शोप-जनक दुःख जो पाते हैं वे जीवदया विना उपार्जित पापो से विक्षुब्ध हैं।

इस तरह दुःख मर्मस्पर्शी पा रहे भय युक्त हों।
पूर्व कृत परिणाम हैं प्रत्यक्ष कैसे मुक्त हों॥
जीवरक्षा के बिना विक्षोभ ही विक्षोभ है।
क्या करें संसार में तो लोभ ही बस लोभ है॥७६॥

[७७]

ते चेव जोणि लक्खा भमियव्व पुणवि जीव संसारे।
लहिऊण माणुसत्तं जइ न कुणसि उत्तम धम्मे॥७७॥

मनुष्य जन्म को पाकर यदि धर्मोद्यम नहीं करोगे तो फिर भी हे जीव! तुम्हें संसार में लाखों योनियों में परिभ्रमण करना पड़ेगा।

दृष्टान्त दस सुप्रसिद्ध हैं नर देह पाने के कठिन।
प्राप्त कर भी है नहीं जिनधर्म पथ में क्यों लगन?
तो हार के यह रत्न मणि संसार में बह जायगा।
लक्ष चौरासी भटकता कष्ट भव भव पायगा॥७७॥

[७८]

नरएसु सु दुस्सह वेयणा उप्पन्नाओ जाइ पइ मूढ।
जइ ताउ सरसि इण्हि भत्तपि न रुच्चए तुज्झ॥७८॥

नरकादि में उत्पन्न होने पर जो दुस्सह वेदनाएँ प्राप्त होती हैं, यदि उनके जैसी यहाँ हो तो हे मूढ! तुम्हें भोजन भी न रुचे!

नरक गति उत्पन्न हो भोगी ज्वलन्ती वेदना।
उसका नहीं कुछ पार है वर्णन जिनागम में घना॥
वैसा यहाँ देखो अगर तुम लेश भी सक्लेश को।
तो भोग की रुचि भी न हो समझो दया संदेश को॥७८॥

[७९]

अच्छंतु ताव नरया जं दुक्खं गब्भ रुहिर मज्झंमि।
पत्तं च वेयणिज्जं तं संपइ तुज्झ वीसरियं ॥७९॥

जो दु:ख गर्भावास मे रुधिर के वीच हैं, वह नरक के सदृश है। वहाँ जो वेदना प्राप्त की, वह अब तुम्हें विस्मृत हो गई।

जो दु:ख गर्भावास मे औंधे लटक करके सहा।
रक्त-रस्सी वीच में मल-मूत्र दुर्गन्धित महा॥
जन्म ले उस वेदना को तुरत ही विस्मृत किया।
रच पच गये संसार में तुम मोहिनीवश हे जिया। ॥७९॥

[८०]

भमिऊण गब्भ गहणं दुक्खाणिय पाविऊण विविहाइं।
लब्भइ माणुस जम्म अणेग भव कोडि दुल्लंभं ॥८०॥

गर्भावस्था प्राप्त कर भ्रमण करते हुए विविध दु:खों को पाकर अनेक कोटि भवों में दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त होता है।

नाना भवों मे भ्रमण करते दु:ख गर्भावास के।
कितने सहे गिनती नहीं तब भव्य नर भव पा सके॥
दुर्लभ अनन्तों जन्म में यह मनुज जन्म कहा गया।
फिर धर्म सामग्री मिली जो और भी मुश्किल महा ॥८०॥

[८१]

तत्थ चिय केइ गब्भे मरंति वालत्तणे य तारुन्ने।
अन्ने पुण अंधलया जावज्जीवं दुहं तेसिं ॥८१॥

यहाँ (मनुष्य भव पा कर) कई तो गर्भ में ही मर जाते हैं, तो कोई बाल्यकाल और तरुणावस्था में, अन्ध फिर अन्धे होकर आजीवन दुःख भोगते हैं।

मरते कई हैं गर्भ में भी कई बालक काल में।
कुछ तरुणवय में पतित होते दुष्ट यम के गाल में॥
कुछ अन्ध होकर कष्ट भोगें पूर्ण जीवनकाल में।
इस भाँति नर देही निरर्थक हो गई जंजाल में॥८१॥

[८२]

अन्ने पुण कोढियया खय वाही गहिय पंगु मूगाय।
दारिद्देणभिभूया परकम्मकरा नरा बहवे॥८२॥

फिर अनेक कोढी, क्षय रोगी, लँगड़े और गूँगे हो जाते हैं। दारिद्र से अभिभूत बहुत से लोग पराये घर काम करने वाले हैं।

कोढी बना क्षय रोग ग्रासित, काल यह विकराल ही।
कुछ पंगु लँगड़े घूमते कुछ मूक हैं वय बाल ही॥
दारिद्र्य से अभिभूत जन बहु काज पर घर में करें।
इस भाँति पा नर देह को भी व्यर्थ खोकर ही मरें॥८२॥

[८३]

थेवाणं होइ दव्वं तमिय जल जलण चोर राईहिं।
अवहरियंमिय सते तिव्वयर जायए दुक्खं॥८३॥

बहुत थोड़ों के पास द्रव्य होता है, उसे भी जल अग्नि चोर और राज्य का भय है। अपहरण हो जाने पर तीव्रतर कष्ट उत्पन्न होता है।

अल्प जन - धनवान होते सदा निर्भय है नहीं।
जल-अग्नि-तस्कर-चोर राजा का सताता भय सही ॥
अपहरित हो तब तीव्रतर दुःख भोगना उनको पड़े।
इस भाँति पा नर देह को वे दुःख में ही तडफड़े ॥८३॥

[८४]

पविसंति समर मज्झे खग्गुग्गय सिहि फुलिंग दुप्पिच्छे।
सागर मज्झे वि तहा अत्थस्स समज्जणे पुरिसा ॥८४॥

अर्थोपार्जन के हेतु मनुष्य युद्धक्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं, दुष्प्रेक्ष्य उग्र खड्ग-धारा, अग्नि शिखा स्फुलिंग सहते हैं, वैसे ही समुद्र में भी प्रविष्ट होते हैं।

रणक्षेत्र मे घुसकर सहें वे खड्गधारा उग्रतर।
हम देख भी सकते नहीं स्फुलिंग गोले अग्निभर ॥
अर्थ हेतु समुद्र में जा कष्ट नाना जन सहें।
इस भाँति पा नर देह भी वे धर्म बिन खोते रहें ॥८४॥

[८५]

इय नाऊण असार ससारे दुल्लहं च मणुयत्तं।
जं ण कीरउ जीवदया जा विउडइ सव्व दुक्खाइं ॥८५॥

इस प्रकार ससार की असारता और मानव भव की दुर्लभता ज्ञात कर समस्त दुःखों को नाश करने वाली जीवदया धारण करो।

यों ज्ञात करके जगत् की प्रत्यक्ष ही निस्सारता।
दुर्लभ मनुज भव बिन न पाये विश्व पार अपारता ॥

सब दुःख नाशक मात्र है यह तत्व प्राणी की दया।
धारण करो सुविवेक से सब गुण इसी में आ गया ॥८५॥

[८६]

भव लक्खेसु वि दुलह ससारे मूढ जीव मणुयत्त ।
तेण भणिमो अलज्जिर अप्पहिय किं न चिंतेसि ? ॥८६॥

हे मूर्ख ! ससार में लाखो भवो में भी दुर्लभ मनुष्य जन्म है। इसलिए मैं कहूँगा कि हे निलज्ज ! आत्म हित चिन्तन क्या नही करते ?

रे मूर्ख। इस ससार में नर देह को तू पा गया।
लाखों भवों के बाद भी यह रत्न हाथों आ गया ॥
इसलिये कहते मनीषी इसे मत असफल करो।
प्राप्त अवसर आत्मचिन्तन साधना अविचल धरो ॥८६॥

[८७]

दियहाइ दोन्नि तिन्नि व अद्धाण होइ जतु लग्गेण।
सव्वायरेण तस्सवि सबलए उज्जम कुणसि ॥८७॥

दो तीन दिन या आधे दिन के लिए भी यदि प्रवास में जाना हो तो उसके लिए सर्वादरपूर्वक सबल के लिए उद्यम करते हो।

जाना अगर बाहर हुआ दो एक दिवस प्रवास में।
हो अर्द्ध दिन के ही लिये तैयारियाँ आवास में ॥
जलपान करने के लिए संबल सजाते हो सदा।
कारण सफर में क्षुधित भी रहना पड़ नहिं सवथा ॥८७॥

[८८]

जो पुण दीह पवासो चउरासी जोणि लक्ख नियमेण ।
तस्स तव सील मइं यं संवलयं किं न चिंतेसि ? ॥८८॥

तो फिर चौरासी लक्ष जीवा योनि का नियम से दीर्घ प्रवास है, उसके लिए तप, शील सयुक्त सबल की चिन्ता क्यो नही करते ?

फिर लक्ष चौरासी भवों का वहुल दीर्घ प्रवास है।
नियमा भटकना होयगा सबल नहीं कुछ पास है॥
तद् हेतु संयम शील तप का सबल संबल चाहिए।
इसके विना फिर सिद्धि स्थितिको कहो कैसे पाइये ॥८८॥

[८९]

पहरा दियहा मासा जह-जह संवच्छराइं वोलिंति ।
तह-तह मूढ वियाणसु आसन्नी होइ ते मच्चू ॥८९॥

प्रहर, दिन, महीने और वर्ष जैसे-जैसे वीतते जाते हैं वैसे-वैसे ही हे मूर्ख । यह जान लो कि मृत्यु निकट आ रही है।

पल पल प्रहर है वीतता दिन पक्ष मौसम मास भी।
ये वर्ष वीते जा रहे है क्षीण होते श्वास भी॥
हम मूर्ख क्यो न विचारते आयुष्य प्रतिपल घट रही।
मरना निकटतम आ रहा तुम वदलते करवट नहीं ॥८९॥

[९०]

के दियहं वास सयं तस्सवि रयणी सुहीरए अद्ध ।
किंचि पुण वालभावे गुण दोस अयाणमाणस्स ॥९०॥

सौ वर्षों के कितनेक दिन होते हैं। जिसमें आधे तो रात्रि में सोकर गँवा दिये, और फिर कुछ गुण दोष (भला बुरा) न जानकर बाल-भाव में गँवा दिये।

कितने दिवस होते बरस में त्यों शतायुष दीर्घतर।
अर्द्ध जाते रात के खोते हैं जिनको सोय कर॥
गुण-दोष कृत्याकृत्य का नहिं ज्ञान बालक भाव में।
खो दिया है सर्वथा यह भव समुद्र बहाव में।६०॥

[६१]

सेस कम्मेण चिय वेडाण अद्धाण खेय खिन्नाण।
वाहि सय पीड़ियाण जराइ सखडियाणं च॥६१॥

अवशिष्ट वर्षों को आधे काम धन्धे में बिताते खेद खिन्न शत व्याधि पीड़ित और जरादि से खण्डित कर दिये।

अवशिष्ट आयुष के बरस व्यापार धन्धे आदि में।
लग कर बिताये हैं अहर्निश मोहवश असमाधि में॥
शत व्याधि पीड़ित खेद खिन्नादिक अवस्था में गये
बहुमूल्य नरभव जरा जर्जर युक्त खण्डित कर दिये॥६१॥

[६२]

जस्स न नज्जइ कालो नय वेला नेव दियह परिमाण।
नरएवि नत्थि सरणं नय वेला दारुणो मच्चू॥६२॥

जो न काल, न समय न दिन, न आयु-परिमाण देखती है, ऐसी दारुण मृत्यु के समय नरक में भी शरण नहीं।

कब आयगा है क्या ठिकाना काल सिर पर छा रहा।
आयुष्य परिमाणादि का न विचार कुछ भी आ रहा॥
नरक तक मे भी शरण पाता न कोई काल से।
ऐसी भयंकर मृत्यु है कोई न छूटे जाल से॥६२॥

[६३]

इय जाव न चुक्कसि एरिसस्स खण-भंगुरस्स देहस्स।
जीवदया ए जुत्तो ता कुणह जिणदेसियं धम्मं।६३॥

इस प्रकार के क्षणभगुर देह को जहाँ तक नही छोड देते, वहाँ तक जिनोपदिष्ट धर्म जो जीवदया युक्त है, उसे करो।

इस देह का ऋण चूकता जब तक नहीं संसार में।
तब तक न चक्कर चूकता चौरासि तथा प्रकार में॥
जप तप दयामय धर्म जिन का आचरण होता नहीं।
तब तक न ऋण चुकता यहाँ कुछ भी करो निश्चित यही॥६३॥

[६४]

जस्स दया तस्स गुणा जस्स दया तस्स उत्तमो धम्मो।
जस्स दया सो पत्त जस्स दया सो जए पुज्जो॥६४।

जिसके हृदय में दया है उसी में गुण है, जिसके हृदय में दया है उसी में उत्तम धर्म है, जिसके हृदय में दया है वही पात्र है और जिसके हृदय में दया है, वही जगत् में पूज्य है।

जिसके हृदय बसती दया वह सद्गुणों का धाम है।
उसमें सकल निज धर्म हैं यह जीव का विश्राम है॥

जिसमें दया है एक लक्षण पात्रता का जान लो।
जिसमें अहिंसा धर्म उसको पूज्य जगमें मान लो ॥६४॥

[६५]

जस्स दया सो तवसी जस्स दया सोय सील सपत्तो।
जस्स दया सो नाणी जस्स दया तस्स निव्वाण।६५॥

जिसके हृदय में दया है वही तपस्वी है, जिसके हृदय में दया है वही शील सम्पन्न है। जिसके हृदय में दया है वही ज्ञानी है, जिसके हृदय में दया है उसीके निर्वाण लाभ होता है।

वह ही तपोधन है कहा जो जीवरक्षा कर रहा।
जिसके हृदय में है दया वह शील युत हो तर रहा॥
ज्ञानी वही है जो सदय निर्वाण का साधक बना।
यह ही कहा है तीर्थपति का चरण आराधक पना ॥६५॥

[६६]

जो जीवदया जुत्तो तस्स सुलद्धो य माणुसो जम्मो।
जो जीवदया रहिओ माणुस वेसेण सो पसुओ ॥६६॥

जो जीवदया युक्त है, उसी को मानव जन्म की शुभप्राप्ति है। जो जीव दया रहित है वह मनुष्य के वेश में पशु है।

उस श्लाघ्य मानव जन्म की उपलब्धि सफला हो गई।
जिसके हृदय में प्राणी हिंसा की प्रतिष्ठा खो गई।
प्राणीदया से जो रहित गुण भी सकल दुर्गुण बने।
पशु तुल्य मानव जन्म जिसमें अन्य जीवों को हने ॥६६॥

[६७]

अहवा दूर पणट्ठो संपइ एस वत्तणस्स सो पुरिसो।
जो जीवदया जुत्तो केरेड जिण देसियं धम्मं ॥६७॥

मानव जीवन में पशु से भी बदतर ऐसा हिंसापूर्ण वर्त्तन करने वाले ने अपना वर्त्तमान काल नष्ट कर दिया है और जो जीवदया युक्त होता है वह निरन्तर जिनोपदिष्ट दया-धर्म का पालन करता है।

पशु सम करे वर्त्तन सदा नर जन्म उसने खो दिया।
हिंसा रमण करके महा दुःख वीज उसने वो दिया॥
'सव्व जग रक्खण' सुशिक्षक है जिनेश्वर देव ही।
जो पालता यह धर्म वह नर देव है स्वयमेव ही ॥६७॥

[६८]

सीए उन्हें य तव जइ तप्पइ उद्ध-बाहु पंचग्गी।
दाणं च देइ लोए दया विणा नत्थि से किंचि ॥६८॥

शीत एव उष्णकाल में जो उर्द्ध बाहु करके पचाग्नि तप तपता है, लोक में दान भी देता है पर दया के विना कुछ भी नहीं।

शीत मे निर्वस्त्र होता ग्रीष्म मे तप तापता।
पंचाग्नि ऊँची बाँह कर आकाश को भी नापता॥
दान भी देता प्रचुर यश लाभ का ही लोभ है।
प्राणीदया के भाव बिन होता सदा विक्षोभ है ॥६८॥

[६९]

थेवोवि तवो थेवंपि दिन्नयं जं दयाए संजुत्तं।
तं होइ असंख गुणं बीय जह वास संपत्तं ॥६९॥

जो दया से सयुक्त थोड़ा भी तप और दान देता है तो वह वर्षा सिंचित बीज की भाँति असख्य गुणा हो जाता है।

अल्प भी जो तप तपे अरु अल्प भी यदि दान दे।
प्राणीदया सयुक्त हो तो महाफल प्रतिदान ले॥
बीज बोया जाय वर्षा समय के अनुकूल हो।
प्राप्त करता वह असख्य गुणित सरस फल फूल जो॥९९॥

[१००]

एक्काविं जेण पत्ता निय देहे वेयणा पहारेहिं।
न कुणइ जइ जीवदया सो गोणो नेय माणुस्सो॥१००॥

अपने शरीर पर एक भी प्रहार करने से कितनी वेदना होती है? यह अनुभव कर जो जीवों पर दया नही करता वह मनुष्य नहीं, बैल है।

निज देह पर तो एक हलकी चोट भी सहता नहीं।
पर प्राण को हरता सदा रक्षण करो कहता नहीं॥
वह बैल होकर चोट ऊपर चोट ही स्वीकारता।
नर जन्म में हिंसक बना जो बैल गतिको धारता॥१००॥

[१०१]

ज नारयाण दुक्ख तिरियाण सहय माणुसाण च।
त जीव पीड़ जणिय दुव्विसह होइ लोयमि॥१०१॥

इस लोक में जो असह्य दुःख नारकों, तिर्यञ्चों और मनुष्यों को है, व दुस्सह दुःख जीव पीड़ा जनित पापों का ही परिणाम है।

तिर्यंच नरक निगोद मे संकट भयंकर भोगते।
देवता भी है दुःखी निज आयुकर्म वियोगते॥
नर-देह मे भी दुःख भरा है सौख्य का तो नाम है।
जीव-पीडा-जनित केवल पाप का परिणाम है॥१०१॥

[१०२]

कालो अणाइ निहणो जीवो दव्व गुणेहिं अविणासी।
तो मा कीरउ पाव जण। जीव दयालुया होह।॥१०२॥

द्रव्य गुण से जीव अविनाशी है, पर काल अनादि अनन्त है। अत हे मनुष्यों। पाप मत करो और जीवों के प्रति दयालु बनो।

द्रव्य गुण हैं जीव के ध्रुव नित्य है यह काल भी।
तू जीव हिंसा के विना क्या नष्ट होगा हाल ही॥
पाप मत कर। पाप मत कर। घोष है जिनधर्म का।
जीव रक्षण कर सदा ही हो न बन्धन कर्म का॥१०२॥

[१०३]

जा कीरइ जीवदया अच्चो किन्हो रएण जीवाणं।
दुक्खाण अणागमणे तह सुक्खाणं अयाण मणे॥१०३॥

जिसने जीवदया की है उसने किन जीवो की प्रेमपूर्ण पूजा नही की? (जो सब जीवो को इस प्रकार सुख पहुँचाता है) उसको दुःख नही आ सकता और अजाने ही सभी सुख उसके मन में प्रतिविम्बित हो जाते हैं।

जीव रक्षण कर लिया जिसने सदा नर देह मे।
उसने सभी पूजन क्रिया सद्भक्तिमय रह गेह में॥

आयास बिन अनजान ही सुख स्रोत उसका खुल गया।
दुःख कभी आते नहीं जो नित्य करते हैं दया ॥१०३॥

[१०४]

सो होइ बुद्धिमंतो अलिएण न जो परस्स उवघाई।
सो होइ सुही लोए जो खाइ न मज्ज मसाई ॥१०४॥

जो झूठ से परोपघात नहीं करता तथा मद्य मांसादि भक्षण नहीं करता, वही बुद्धिमान है और वही जगत में सुखी होता है।

उपघात हो जाता पराया झूठ वचनोच्चार से।
धीमान उसको मानिये जो बचें मिथ्याचार से॥
मांस भोजी, मद्य-पेयी जो नहीं होते कभी।
लोक में होंगे उन्हीं के लिए प्रस्तुत सुख सभी ॥१०४॥

[१०५]

सो पंडिउ त्ति भन्नइ जेण सया नेय खंडियं सील।
सो सूरो वारहडो इंदिय रिवु निज्जिया जेण ॥१०५॥

जो सर्वदा अखण्ड शीलवान है वही पण्डित कहलाता है। सूरवीर, सुभट वही है, जिसने इन्द्रिय रूपी रिपुओं को जीत लिया।

शील से बढ कर जगत में और अन्य न गुण कहा।
पण्डित विचक्षण है वही जिसका अखण्डित व्रत रहा॥
पाँच इन्द्रिय के विषय तेबीस मानो अति विकट।
जिसने हराया अरिगणों को वही सच्चे हैं सुभट ॥१०५॥

[१०६]

रिद्धो जुव्वण गमो रइ सुह सोहग्ग सच्चयं सीलो।
सो जर धाडी इयओ मयरद्धय राइणो मड्ढं ॥१०६॥

सौभाग्यवान, सत्य शील और यौवन समृद्ध होते हुए भी जिसने रति सुख त्यागा उसने जरा की धाड और मकरध्वज राजा का मान मर्दन कर दिया।

सौभाग्यशाली, सत्य यौवन ऋद्धि से परिपूर्ण है।
त्याग के रति सुख सभी वे कर्म करते चूर्ण है॥
धाड उसने जरा रिपु की है भगायी शान से।
मर्दन किया है मदनको खण्डित किया अभिमान से ॥१०६।

[१०७]

सयणस्स वि मज्झ गयं ओवरिउं लेइ मड्डालेहिं।
मारेइ न वरि मिल्लइ घोर जरा रक्खसी पुरिसं ॥१०७॥

मरणोन्मुख व्यक्ति यदि स्वजनो के बीच जाकर भी शरण लेता है तो भी घोर जरा राक्षसी पुरुषों को मारती है, पर छोडती नही।

स्वजन परिजन मध्य जा कर व्यक्ति जो शरणा गहे।
मरणोन्मुखी वह तो कभी भी ना बचे मरणा लहे॥
घन घोर डाइन जरा रूपी मारती नहिं छोडती।
नश्वर पुरुषको नाश करने मे न वह मुख मोडती ॥१०७॥

[१०८]

भव रन्ने जीव मओ जो गहिओ तेण मरण सीहेण।
असमत्था मोएउं सयणा देवाय इ दाणि ॥१०८॥

भव रूपी अरण्य में जिस जीव को मरणरूपी सिंह ने ग्रहण कर लिया, वह मर गया। उसे छुड़ाने के लिए स्वजन, देव और इन्द्र भी असमर्थ हैं।

भव रूप घोर अरण्य में यह घूमता हरि एक है।
नाम उसका मरण है और अचल उसकी टेक है॥
जिस जीव को है ग्रहा उसने मरा, पर न बचा कभी।
स्वजन परिजन अमर इन्द्रादिक हुए असमर्थ भी॥१०८॥

[१०६]

तुम्ह मइलेयाइ खइयाइ जेण कालसप्पेण।
सो किं कहवि पलाओ मउअ वीसत्थया जेण॥१०६॥

कालरूपी सर्प के द्वारा तुम निरन्तर भक्षण किये जा रहे हो और संसार में विश्वस्त होकर इस प्रकार बैठे हो मानो काल में कोमलता हो, परन्तु उससे बच कर कहाँ भग सकोगे?

जो काल सर्प निगल रहा है द्रव्य प्राणों को यहाँ।
उससे पलायन कर अरे तुम भाग सकते हो कहाँ?
निश्चिन्त होकर सो रहे हो कर्म की आसक्ति में।
क्यों न मन रखते निरन्तर देव गुरु की भक्ति में॥१०६॥

[११०]

जर केसर वीहच्छओ दढ दाढा दुपिच्छओ।
वयण करं हहिर भिंदओ वियरइ मरण मइंदओ॥११०॥

मरणरूपी मृगेन्द्र वीभत्स केसरी-केश जिसके फैले हुए हैं, जिसके दाँत, दाढाए खुली हुई हैं, जिसकी पूँछ कुटिल है और जिसके हाथ और मुँह हाथियो के कुभस्थल विदीर्ण करने के कारण रुधिर से मने हुए हैं, चारों तरफ घूम रहा है।

यह मरण रूप मृगेन्द्र जग मे घूमता स्वच्छंद ही।
वीभत्सता इसकी घृणास्पद संतजन कहते सभी॥
पूछ जिसकी है कुटिलतम दन्त दाढा विकट है।
रुधिरमय है कर वदन यह काल सब के निकट है॥११०॥

[१११]

जो जीवदया अजुत्तए दारुणए मंस रस पुच्छए।
पर दुक्ख अयाणमाणए से पुरिसे जय पूयणिज्जए॥१११॥

जो जीवदया से रहित है, वही दारुण मास रसकी चाह करता है। पराये दुःख को न जाननेवाला वह पुरुष क्या जगत में पूजनीय हो सकता है?

प्राणीदया से रहित जो नर देव देवी भी रहा।
मासभोजी या वली-इच्छुक पुजारी जन कहा॥
पर दुःख जो न पिछानता भीगा न करुणा दृष्टि में।
मान्य होगा क्या कभी वह ज्ञानियों की दृष्टि मे॥१११॥

[११२]

जइ रक्खइ नेय अलियए निय धणं निय कलत्तए।
जइ तह विणएव रक्खए ता किं पावइ कोइ मुक्ख ए॥११२॥

जो अपने को कचन कामिनी के मिथ्या सम्बन्ध से नही बचाता और केवली प्रभु के विनय के आधार पर आत्मा की रक्षा नही करता। वह कैसे सिद्ध हो सकता है?

कंचन कलत्रादिक परिग्रह जो न तजता भाव से।
प्रभु के विनय चारित्र से निज गुण न रखता चाव से॥
निर्ग्रंथ वचनों से रहित हो पाप के विस्तार में।
वह सिद्धि कैसे पायगा जो रम रहा संसार में॥११२॥

[११३]

जइ इच्छह सयल सुक्खए अह सायहु परम सुक्खए।
ता होह दयाए जुत्तए करह य जिणाण वुत्तए॥११३॥

यदि सकल सुखों की इच्छा करते हो या मोक्ष की परम साधना करना चाहते हो तो जीवदया युक्त होकर जिनोक्त धर्म करो।

जो चाहते सुख नित्य केवल धर्म का साधन करो।
जो चाहते हो मोक्ष तो जिन वचन आराधन करो॥
धारण करो दिल में दया हिंसा सदा वारण करो।
छोड़ो निमित्ताधीनता संसार निष्कारण करो॥११३॥

[११४]

सो सव्वस्स वि पुज्जो सव्वस्स वि हियय आसमो होइ।
जो देस काल जुत्तं पिय वयणं जाणए वुत्तुं॥११४॥

वह सब से पूज्य और सभी के हृदय में उसको स्थान प्राप्त होता है जो देश काल युक्त प्रिय वचन बोलना जानता है।

जो देश-काल-विचार कर प्रिय वचन सत्य उचारते।
वे सन्त सब के हृदय को विश्राम देकर धारते॥
होते सभी के पूज्य पाते दिव्यतर सन्मान है।
रहता सदा उनको निरन्तर सर्वहित का ध्यान है॥११४॥

[११५]

जं कल्ले कायव्वं अज्जं चिय तं करेह तुरमाणा।
बहु विग्घो य मुहुत्तो मा अवरण्हं पडिक्खेह ॥११५॥

जो कल करना है, आज ही अभी शीघ्र कर डालो। दूसरे दिन की प्रतीक्षा मत करो। क्योंकि मुहूर्त में भी वहुत विघ्न आ सकते है।

करना तुम्हें जो कल, करो वह आज ही तत्क्षण अभी।
वोलो तनिक यह काल किसके हाथ में आया कभी॥
जैसा समय उपलब्ध है उपयोग कर लो ध्यान से।
जप तप व्रतादिक आचरो सम्यक्त्व पूर्वक ज्ञान से॥११५॥

प्रशस्ति :—

इन्द्रादि भी जिनकी अहर्निश चरण कज सेवा करें।
युगप्रवर सद्गुरु साधकोत्तम योग ध्यान हृदय धरें॥
एकावतारी पुण्य प्रतिमा आज पचमकाल मे।
हैं धन्य सहजानन्द स्वामी मग्न निज सुख हाल में॥१॥

जिनभद्रसूरि सुलेख से प्रकरण हुआ उपलब्ध है।
हरिगीतिका में रच दिया अब लेखनी यह स्तब्ध है।
मैं छन्द भाषा आदि से अनजान हूँ समझो सही।
पर है 'भँवर' की कामना स्वाध्याय की इस में रही॥२॥

पच्चीससौ से कम रहे दश वर्ष प्रभु निर्वाण के।
इस कालिकत्ता बंग भू में भाव-निज-कल्याण के॥
ये पद्य पढ कर जीव रक्षण लक्ष्य यदि अपना लिया।
आजन्म आज समान श्रावण पूर्णिमा रवि व्रत किया॥३॥

नाना वृत्तक प्रकरण

नमिऊण जिण जय जीवबधव धम्म कणय कसवट्ट ।
वुच्छ धम्ममईण धम्म विसेस समासेण ॥१॥

धमरूपी कनक के लिए कसौटी सदृश जगद्बन्धु जिनेश्वर को नमस्कार करके धर्म बुद्धि से संक्षेप में विशिष्ट धम कहता हूँ।

नाणा चित्ते लोए नाणा पासडि मोहिय मईए।
दुक्ख निव्वाहेउ सव्वन्नुवएसिओ धम्मो ॥२॥

अनेक पाखण्डियो से मोहित बुद्धि वाले एव अनेक प्रकार के चित्तवाले इस लोक में दुःख की निवृत्ति (निव्वुयहेऊ) का हेतु (एक मात्र) सव ज्ञोपदिष्ट धम ही है।

बहुगुणस पवत्तो बहु कवि कोउगु बद्ध सम्माहो।
अविमग्गिय सब्भावो लोओ अलिओ य बलिओय ॥३॥

अनेक काव्य कला में प्रवृत्त लोगो तथा कवि के कौतुकों से कटिबद्ध लोगों के द्वारा इस लोक का सद्भाव अन्वेषित है, (अन्यथा) यह ससार झूठा और बलिष्ठों का है।

धम्मो धम्मुत्ति जगम्मि घोसए बहु विहेहिं रूवेहिं।
सो मे परिक्खियव्वो कणगव्व तिहिं परिक्खाहिं ॥४॥

जगत् में नाना प्रकार के रूप में "धर्म-धर्म" (यह धर्म यह धर्म) इस प्रकार (लोग) चिल्लाते है। (किन्तु) सोने की तरह उसकी परीक्षा तीन प्रकार (कष, छेद और ताप-) से करनी चाहिए।

न य तस्स लक्खणं पंडरं च नीलं च लोहियं वावि।
एक्कोसि नवरि भेओ जमहिंसा सव्व जीवेसु ॥५॥

उसका लक्षण पीला, नीला, लाल आदि नही है पर केवल एक ही भेद (रहस्य) है और वह है सर्व प्राणियों के प्रति अहिंसा-दया।

लद्धं ति सुदरं चिय सव्वो घोसेइ अप्पणोपणिय।
केइएण वि घित्तव्वं सुदर सुपरिक्खिउं काउं ॥६॥

जैसे सभी (दुकानदार) अपने माल को सुन्दर कहते पाये जाते हैं, वैसे सभी धर्मवाले अपने धर्म को सुन्दर बताते हैं परन्तु क्रेता-खरीददार को उसकी अच्छी तरह परीक्षा करके उसे ग्रहण करना चाहिए।

नि(१ने)च्छंति विक्किणंता मंगुल पणियं पि मंगुलं वुत्तं।
सव्वे सुंदर रागं उच्चय रागं च घोसति ॥७॥

कोई भी विक्रेता (दुकानदार) अपने खराब माल को खराब नही बताना चाहते सभी उच्च स्वर से उसकी सुन्दरता (अच्छाई की राग आलापते हैं।

तो मे भणामि सव्वे नह घोसण विम्हिएहिं होयव्वं।
धम्मो परिक्खियव्वो तिगरण सुद्धो अहिंसा ए ॥८॥

तब मैं सब को कहूँगा कि ऐसी घोषणाओं से विस्मित नही होना चाहिए और त्रिकरण शुद्ध अहिंसा से धर्म की परीक्षा करनी चाहिए।

हेरन्निओ हिरन्न थाहिं विज्जोमणिं च मणियारो।
धाउं च धाउवाई जाणइ धम्महिउ धम्म ॥९॥

सौवर्णिक सोने को, मणिकार मणि को और धातुर्वादी धातु को जैसे पहचानता है वैसे ही धर्मस्थित धर्मात्मा व्यक्ति धर्म को जानता है।

धम्म जणो वि मग्गइ मग्गतो वि य न जाणइ विसुद्धिं।
धम्मो जिणेहिं भणिओ जत्थ दया सव्व जीवाण ॥१०॥

जनता धर्म को ढूंढती है, परन्तु ढूंढती हुई भी वह उसकी विशुद्धि (शुद्धता) को नहीं पहिचानती, जहाँ सब जीवों के प्रति दया है (उसे ही) जिनेश्वर देवों ने धर्म कहा है।

जह नयर गंतुमणो कोइ भीमाडवि पविसिज्जा।
पंथ समासग्गाही अपरिच्छियपंथ सब्भावो ॥११॥

जिसे सुमार्ग के सद्भाव की जानकारी नहीं हो, वह संक्षिप्त सुगम मार्ग लेकर दूसरे नगर में जाने के लिए रवाने होता है, किन्तु भयंकर अटवी में प्रविष्ट हो जाता है। वैसे ही जिसने सद्धर्म मार्ग की परीक्षा नहीं की है वह भी (मोहक व सरल लगनेवाले) अपरिचित मार्ग पर चढ जाता है।

पथ सरिसा कुपथो बहुं च कणय सरिस नय सुवन्न।
धम्म सरिसो अहम्मो नायव्वो बुद्धिमतेहिं ॥१२॥

बुद्धिमानों को यह जान लेना चाहिए, पथ के समान जैसे कुपथ दिखता है, वैसे ही धर्म के समान अधर्म दिखता है, परन्तु सोने की तरह चमकने वाला सभी सोना नहीं होता।

जो न हिंसइ सो धम्मो जो न भुजइ सो तवो।
जो न लुब्भइ सो साहू जो न रूसइ सो मुणी।।१३।

जहाँ हिंसा नही वहाँ धर्म है, जहाँ भाग नही वहाँ तप है, जो लुब्ध नही होता वह साधु है, और जो रुष्ट नही होता वह मुनि है।

नय मुडिएण समणो न उंकारेण वंभणो।
न मुणी रन्न वासेण कुस चीरेण न तावसो।।१४।

केवल मुण्डित होने से श्रमण नही और ओंकार से ब्राह्मण नही, निरे वन-वास करने से मुनि नही होता और वल्कल वस्त्र धारण करने से तापस नहीं होता।

तवेण तावसो होइ वंभचेरेण वंभणो।
पावाइं परिहरंतो परिवा(य)उत्ति वुचइ।।१५।।

तप से तपस्वी, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण और पापों का त्याग करने से परि-ब्राजक कहलाता है।

तो समणो जइ समणो (?सुमणो) भावेणयजहन होइपावमणो।
सयणेय (पर) जणेय समो समो य माणावमाणेसु।।१६।।

यदि सु (अच्छा) मन है तो वह श्रमण (समन) है, जहाँ भाव से भी पापयुक्त मन वाला नही होता और जो स्वजन-परिजन के प्रति सम है, मान और अपमान मे भी समभावी है (वही श्रमण है)।

नत्थि असि कोइ वेसो पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो एसो अन्नो वि पज्जाओ।।१६।।

जो सर्व जीवों का प्रिय (प्रेमी) है, उसका कोइ एक निश्चित वेष नही होता। इसी गुण से वह श्रमण होता है। इसके अन्य पर्यायवाची शब्द भी है?

जाइवि अप्पमाणा कुल ववएसो विसुद्धओ डिंभो।
पंडिच्चंपि पलाल सीलेण विसवयवस्स ॥१८॥

जो शील पर सम्यक् प्रकार से चलता है उसे अपनी विशुद्धता के लिये जाति भी अप्रमाण है, कुल का व्यपदेश (कथन) भी दंभ (बालिशता) है और पाण्डित्य भी पराल (घास) है।

वेया वागरण धा भारह रामायण पुराणाइ।
जइ पढइ जीववहओ दुग्गइ गमण फुड तस्स ॥१६॥

जो वेद, व्याकरण, महाभारत, रामायण और पुराण पढता है, किन्तु जीववध करता है तो (वे उसके सुगति के कारण नही बन सकते बल्कि) उसका दुर्गति गमन स्पष्ट है।

किं ताए पढियाए पय कोडीए पलाल भूयाए।
जत्थित्तिय न नाय परस्स पीडा न कायव्वा ॥२०॥

उन करोड़ो पदो को पढने से भी क्या हुआ? सब तृणवत् है, जहाँ इतना भी नही जाना कि पराये को पीड़ा नही पहुँचानी चाहिए।

छद सर सह जुत्तेवि पवयणे सक्क(य)अक्खर विचित्ते।
धम्मो जेहिं न नाओ नवरि तुसा खडिया तेहिं ॥२१॥

संस्कृताक्षरो से विचित्र छटादार एवं छद, स्वर, शब्द आदि से युक्त प्रवचन करने पर भी जिन्होने धर्म को नही जाना, उन्होने केवल भूसा ही कूटा है।

सम विसमऽपि पढंता विरया पावेसु सुगइ जति।
सुदूढवि सक्कय पाढा दुस्सीला दुग्गइ जंति ॥२ ॥

ऐसा नट पाण्डित्य और भ्रष्ट चारित्र्य कभी सद्गति नही ले जाता। लोक उससे बोध भले ही पा जाँय पर उसकी गति तो पापिका ही होती है।

सिन्निसया सेसट्ठा पासडीण परुप्पर विरुद्धा।
नय दूसति अहिंसत गिन्हह जत्थ सा सयला ॥२८॥

अहिंसा का आचरण करने वाले को परस्पर विरुद्ध ३६३ पाखण्डियों के मत भी दूषित नहीं करते। इसलिए जो सकल (पूर्ण) अहिंसा है वही ग्रहण करो।

जह उडुवइ मि चइए सयल समत्थमि पुन्निमा होइ।
तह धम्मो वि दयाए होइ समत्थो समत्ता ए ॥२९॥

जैसे तारागणों के उदित होने पर भी सब समय तो (पूर्ण चन्द्र वाली) पूर्णिमा ही होती है। उसी प्रकार धम भी समस्त (सम्पूर्ण) दया के होने पर ही समथ होता है।

जो गिन्हइ कायमणी वरुलिय मणिति नाम काऊण।
सो पच्छा परितप्पइ जाणग जणो विउसतो ॥३०॥

जो वैडूयमणि के नाम से (बहाने) काचमणि को ग्रहण कर लेता है, परन्तु जानकार व्यक्ति से (स्वरूप) जान लेने पर वह बाद में पछताता है।

न जल न जडा न मुंडणं नेव य वक्कल चीवराणि वा।
नरस्स पावाइ विसोहयति जहा दया थावर जगमेसु।

मनुष्य के पाप न तो जल ही शुद्ध कर सकता है, न जटाए, न मुण्डन और न वल्कल वस्त्र ही शुद्ध कर सकते हैं जैसे कि स्थावर और त्रस प्राणियों पर दया (पाप विशुद्धि) कर सकती है।

न धम्मो आसमे वसइ न धम्मो आसमे वसंतस्स।
हियए आसमो तस्स जस्स निक्कलुसा मई ॥३२॥

धर्म न तो आश्रम में रहता है न आश्रम निवासियों में। जिसकी बुद्धि निष्कलक है, उसके तो हृदय में ही आश्रम है।

किमदंतस्स रन्नेण दतस्स वि किमासमे।
जत्थ तत्थ च सदंतो तं रण्णं सो य आसमो ॥३३॥

अदान्त व्यक्ति को वनवास से क्या प्रयोंजन ? और जो सदान्त है, उसके लिए आश्रम में रहने से भी क्या प्रयोजन ? जहाँ-जहाँ सदान्त (इन्द्रिय दमनकर्त्ता) व्यक्ति रहता है, (उसके लिए) वही अरण्य है और वही आश्रम है।

वणे वसउ दुस्सीलो गामे वसउ सीलवं।
जत्थ सीलं तहिं धम्मो गामेसु नगरेसु वा ॥३४॥

दुःशील व्यक्ति यदि वनवास करता है और शीलवान गांव में रहता है, तो जहाँ शील है वही धर्म है, ग्राम या नगर मे कही भी रहो।

जिणो कोहं च माणं च माया लोभं च निज्जिणे।
अभयं देहि जीवाणं गंगाएविय पुक्खरं ॥३५॥

क्रोध, मान, माया और लोभ कषायो को जीतो, जीवों को अभयदान दो। यही गगा (नदी) और यही पुष्कर (स्नान) है।

कोहग्गी माणग्गी मायग्गी निज्जिणेह लोहग्गी।
ता होहि आहियग्गी किं ते समिहाहि दड्ढाहिं ॥३६॥

क्रोधाग्नि, मानाग्नि, मायाग्नि और लोभाग्नि को जीतो। तभी आहिताग्नि बनोगे उनके लिए तुम्हें समिधाओ (इन्धन) के जलाने क्या प्रयोजन ?

जइ डहसि भर सहस्स समिहाणं चेय मत जुत्ताण।
जीवेसु थि नत्थि दया सव्वंपि निरत्थिय हस्स ॥३७॥

यदि हजार भार समिधा इन्धन भी मन्त्रयुक्त आहुति देकर जलाता है पर प्राणियो पर दया नही है तो उसका सभी निरर्थक है।

कोहस्सय माणस्स य माया लोभस्स निग्गहो नत्थि।
किं काहिंति जडाओ तिदंड मुंडं च छागे वा ॥३८॥

जहाँ क्रोध मान, माया, लोभ कषायो का निग्रह नही वहाँ जटाए, त्रिदंड, मुण्डन या मृगचर्म क्या करेंगे।

जइ वहसि केस भार च्छार खोर च चीवरं दोर।
नय वहसि सील भार वहसिय भार अणत्थाणं ॥३९॥

यदि जटा-केशो का, राख (क्षार) उस्तरा (क्षुर) कषायवस्त्र (चीवर) और डोरी (यज्ञोपवीत) का भार ढोते हो, किन्तु शील का भार वहन नहीं करते तो केवल अनर्थों का ही भार वहन करते हो!

कुव्वे पवरं पट्ट पिट्ठी घट्टा जडाकलावेण।
पास च कुंडियाए तहावि नो जाणिओ धम्मो ॥४०॥

केवल पट्ट पीठ और घड़े जैसी जटाजूट करके पास में कमडलु रखने पर भी धर्म नही जाना तो (क्या सिद्धि किया !)

कुम्मय तिदंडधारी निलज्जो अहिय बहु चुकारो।
तव नियमेसु असारो हिंडइ पच्चक्खओ गोणो ॥४१॥

कुमती, त्रिदण्डधारी निलज्ज अहित और अत्यन्त भ्रष्ट, सारहीन तप नियमादि में प्रवृत्त प्रत्यक्ष बैल की तरह भटकता है।

तिन्नेव वहसि दंडे सगडं वा वहसि वेणु दंडाण।
रत्तस्स नत्थि मुक्खो सद्द फरिस रस रूप गंधेसु॥४२॥

त्रिदण्ड वहन करते हो, यदि गाडी भर वेणु दड (वास के दण्ड) वहन करोगे, पर शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध में आसक्त रहोगे तो तुम्हारा मोक्ष नही होगा।

नर सिर कवाल माला न तिदंडं कुडिया जडा मउडो।
नवि छारो नवि दोरो सारो धम्मस्स जीवदया॥४३॥

नरमुण्ड, खप्पर, त्रिदण्ड, कुँडी (कमडलु) जटामुकुट राख या डोरी (यज्ञोपवीत) मे कोई (धर्म का) सार नहीं, जीवदया ही धर्म का सार है।

नय धम्मंमि पमाणं नग्गो मुंडी जडी व कुच्ची वा।
नय नव खंड सुसीविय चीवर धरणं दया धम्मो॥४४॥

धर्म के लिए न तो नग्न, मुडित, जटाधारी, दाढीधारी ही प्रमाणभूत है, और न नौ टुकडे सी कर बनाये हुए चीवर (चिथडे-कथा) का धारण करना ही प्रमाण है। असली धर्म (का प्रमाण) तो दया है।

सोहइ आहियग्गी समणो वा तावसो य सा चेव।
विसया जस्स वसम्मी विसयाणं जो वसे नत्थि॥४५॥

श्रमण हो चाहे तापस हो आहिताग्निसे वही सुशोभित होता जो विषयो के वशवर्ती नहीं, पर विषय जिसके वशवर्ती हैं।

गंगाए जउणाए उव्वुड्डा पुष्करे पहासे वा।
पुरिसा न हुंति चुक्खा जेसिं न चुक्खाइं कम्माइं॥४६॥

जिनके कर्म (कार्य) पवित्र नही है वे पुरुष गगा, जमुना, पुष्करराज या प्रभास (पट्टन) तीर्थ में डुबकी लगाने से पवित्र नही होते।

चंडाला सोयरिया केवट्टा मच्छ बधया पावा ।
तित्थ सएसु वि न्हाया नवि ते उदएण सुज्झति ॥४७॥

जो चाण्डाल, सौकरिक (कसाई), केवट, मच्छीमार आदि पापी हैं वे सैकड़ों तीर्थों में नहाने पर भी पानी से शुद्ध (पवित्र) नहीं होवे ।

पड मइल पक मइला धूलीमइला न ते नरा मइला ।
जे पाव कम्म मइला ते मइला जीव लोगम्मि ॥४८॥

जिनके कपड़े मैले हैं, जो कीचड़ से मैले हैं या धूल से मैले हैं वे वास्तव में मैले नही है इस जीव लोकमें मैले तो वे हैं, जो पाप कमसे मलिन हैं।

सुचिरपि धोयमाणो बाहिरओ स बहुएण उदएण ।
नवि सुज्झति मणुस्सा अतो भरिया अभिज्झस्स ॥४९॥

चिरकाल तक बाहर से बहुत से पानी द्वारा धोने पर भी अतर के पाप (मैलसे) भरे मनुष्य शुद्ध नही होते ।

जहा कालो इगालो दुद्धद्धोओ न पडुरो होई ।
तह पाव कम्म मइला उदएण न निम्मला हु ति ॥५०॥

जैसे काला कोयला दूध से धोने पर भी उज्ज्वल नही होता वैसे ही पाप कर्म से मलिन व्यक्ति कभी पानी से निर्मल नहीं होते ।

सच्च सोयं तव सोय सोयमिंदिय निग्गहो ।
सव्व भूय दया सोय जल सोय च पचम ॥५१॥

सत्य शुचि है, तप शुचि है, इन्द्रिय निग्रह शुचि सब प्राणियों पर दया शुचि है और पांचवी शुद्धि जल की है ।

एय पंचविह सोयं पंचिंदिय विसोहण ।
जेसिं न विज्जए देहे ते मूढा सोय वज्जिया ॥५२॥

ये पाच प्रकार की शुचि पचेन्द्रिय विशुद्धिकारक है। जिसके देह में ये नहीं, वे मूढ शुचि रहित हैं।

त ण्हाएणवि तणु सोही[1] करेई अवणेई वाहिरं पंकं।
एए उदयस्स गुणा नहु उदयं सुगइं नेइ ॥५३॥

उस नहाने से देह शुद्धि होती है, बाह्य मैल साफ होता है। यह जल का गुण है, पर जल सद्‌गति में नही ले जाता।

सच्चेण संजमेण य तवेण नियमेण बंभचेरेण।
सुद्धो मायग रिसि नय सुद्धो तित्थ जत्ताहिं ॥५४॥

सत्य, सयम, तप, नियम और ब्रह्मचर्य द्वारा मातग—चाण्डाल, भगी भी शुद्ध है। सिर्फ तीर्थ यात्राओं से कोई शुद्ध नहीं होता।

तित्थं जणो वि मग्गइ तित्थस्स विनिच्छियं अयाणंतो।
तित्थं जिणेहि भणियं जत्थ दया सव्व जीवाणं ॥५५॥

तीर्थ के विनिश्चय (रहस्य) को नहीं जानने वाला मनुष्य तीर्थ की तलाश में भटकता है। (परन्तु) जिनदेवों ने जहाँ सर्व जीवो के प्रति दया है उसे ही तीर्थ कहा है।

नाणोदय पडिहच्छ धिइ पालीयं चरित्त सोवाणं।
अप्पा जेसि न तित्थं तित्थं खु निरत्थयं तेसिं ॥५६॥

जिनकी आत्मा ने ज्ञान की उन्नति को ठुकराया और चारित्र सोपान का पालन न किया, वह तीर्थ नही उनके लिए तीर्थ भी निरर्थक है।

किं निग्गुणस्स तित्थं काही हिंसालिए पवत्तस्स।
परधण परदार रयस्स लोह मोहाभिभूयस्स ॥५७॥

१—"तन्हाइय वितन्ही" मूल प्रति में है।

हिंसा और झूठ में प्रवृत्त, परस्त्री और पराये धन में अनुरक्त एवं लोभ व मोह से अभिभूत दुर्गुणी के लिए तीर्थ भी क्या करेंगे।

जीवे न हणइ अलियं न जपए चोरियं पि न करेइ।
परदारं पि न वच्चइ घरेवि गंगा दहो तस्स ॥५८॥

जो जीवघात नहीं करता, मिथ्या नही बोलता, चोरी नही करता और परस्त्री गमन भी नही करता उसके घर में ही गंगा कुंड है।

जीवे हिंसइ अलियं पि जपए चोरियं पि य करेइ।
परदारं चिय गच्छइ गंगावि परम्मुहा तस्स ॥५९॥

जो जीव हिंसा करता है, झूठ बोलता है और परस्त्री गमन करता है उसके लिए गंगा भी पराङ्मुख है।

एगट्ठाणमि ट्ठिओ अहिसेयं कुणइ सव्व तित्थेसु।
जो इंदिए निरुभइ अहिंसउ सच्चवाई य ॥६०॥

जो इन्द्रिय निग्रह करता है, अहिंसक और सत्यवादी है वह एक स्थान में—घर में—रहा हुआ भी सब तीर्थों में अभिषेक करता है।

वास सहस्सपि जले डुब्बुइ निब्बुड्डं जइ करेइ।
जीव वहओ न सुज्झइ सव्वेणवि सायर जलेण ॥६१॥

जीव वध करने वाला यदि हजार वर्ष पर्यन्त जलमें डुबकियाँ लगाता रहे पर उसकी समूचे समुद्र के जल से भी शुद्ध नहीं होती।

मच्छाय कच्छपा चिय गाहा मयराय सुंसमाराय।
दिद्दिव्व विमाणं गया जइ उदयं सुगइ नेइ ॥६२॥

यदि पानी सुगति में ले जाने वाला होता तो मछलियाँ, कछुए, ग्राह (घड़ियाल) मगरमच्छ एवं सुसमार (जलजन्तु) कभी के वैमानिक देव लोक में चले गये होते।

जल मज्जणेण अंगं फुट्टं हुट्ठाय आयमंतस्स।
नय कोइ गुणो पत्तो सीएण व मारिओ अप्पा ॥६३॥

जल मज्जन करते करते शरीर फट गया और आचमनो से होठ फट गए पर कोई गुण प्राप्त नही हुआ, व्यर्थ ही खुद को ठढ में मारा।

जइ मट्टियाए सग्गो उदएणं मीलियाइं संती ए।
मन्नामि कुंभकारा सपुत्त दारा गया सग्गं ॥६४॥

यदि पानी के साथ मिली हुई मिट्टी (शरीर पर पोतने) से ही स्वर्ग मिल जाता तो मै समझता हूँ, कुम्भार स्त्री पुत्र सहित (कभी के स्वर्ग चले गये होते।

जइ थुणइ देवयाओ लोए हिंडइय सव्व तित्थाइं
जीवेसु वि नत्थि दया सव्वंपि निरत्थयं तस्स ।६५॥

जो लोक में सर्व तीर्थों में घूमता है, देवताओ की स्तुति करता है, परन्तु उसके हृदय में यदि जीवों के प्रति दयाभाव नहीं है तो उसके लिए सब निरर्थक है

तप्पउ य उद्धबाहु होऊ सेवाल-मूल-फल-भक्खी।
कंटय पह सयणं वा करेउ पंचग्गि तावं वा ॥६६॥
चरउ य वयाइ नाणा विहाइं हिंडउय सव्व तित्थाइं।
वेसं च कुणउ किंची सीलेण विणा न से किंचि ॥६७॥

उर्द्ध वाहु करके तप करो या सेवाल, फल, मूल का भक्षण करो। अथवा कटक पथ पर शयन करो या पचाग्नि ताप तपो। नाना प्रकार व्रतचर्या करो व सर्व तीर्थाटन करो एव कैसा भी वेश धारण करो, पर शील के विना उस में कुछ भी नही।

मोण वा आसेवउ आसम-वास अरन्न वासं वा।
हियये जस्स न सुद्ध सव्वमसुद्ध' परिकिलेस ॥६८॥

मौन रहो, आश्रमवास करो या अरण्यवास करो, जिसका हृदय शुद्ध नहीं है, उनके लिए ये सब्वे अशुद्ध (खाइयसुद्ध) सभी अशुद्ध और क्लेश कर है।

उज्झइय चोवराइ जइ हिंडइ नग्ग वेस भावेणं।
जीवेसु य नत्थि दया सव्वपि निरत्थय तस्स ।६६॥

जो वस्त्रादि का त्याग कर नग्न भाव में घूमते हैं पर जीवों के प्रति जिसके दया नहीं उसके लिए सब कुछ निरर्थक है।

तव नियम दिक्खियाणं पंचिंदिय अग्गिहुत्त ठवियाणं।
जीवदय जन्नियाणं दिन्नपि महाफल्ल तेसिं ॥७०॥

पचेन्द्रिय रूपी अग्निहोत्र स्थापक, तपनियम में दीक्षित और जीवदया के याज्ञिक हैं, उन्हें दान देने से भी महाफल होता है।

सच्च च जस्सकुंड तवो य अग्गी मणं च समिहाओ।
इ दिय गामा य पसू सयायणे दिक्खिओ होइ ॥७१॥

जिसके सत्य ही यज्ञकुण्ड है, तपरूपी अग्नि और मन रूपी काष्ठ-समिधा है, और इन्द्रिय समूह ही पशु है शाश्वत दीक्षित वही होता है।

धम्मा वणे महल्ले पसारिए सव्व धणिय पासंडे।
सुपरिक्खिऊण गिन्हइ इत्थहु बंचिजए लोओ ॥७२॥

१—"खाइय सुद्ध' पाठ मूल प्रति में है।

महान् विस्तृत धर्मोद्यान में सभी प्रकार के पाषंड (व्रत) वर्णित है (सार्व वार्णिक व्रत फैले हुए हैं) अच्छी तरह परीक्षा करके ग्रहण करो क्योंकि यहीं पर लोग ठगे जाते हैं।

जेसिं पव्वइयाण धण च धन्नं च जाण जुग्गं च।
कय विक्कएण वट्टइ सो पासंडो न पासंडीओ ॥७३॥

जिन प्रव्रजितों के धन धान्य यान व (अश्व बैलादि) जोड़ी है, खरीदने बेचने में लगे रहते हैं, वे पाखण्डी (दम्भी) हैं, व्रतधारी नहीं।

धम्मलिंगं च से हत्थे ववहारोय वट्टइ।
का एसा नाम पवज्जा नेव आडी न कुक्कुडो ॥७४॥

जिसके हाथ मे (साधु-) धर्म के चिन्ह (रजोहरणादि) हैं, वह अगर व्यापारादि में प्रवृत्त होता है तो ऐसी नाम की प्रव्रज्या से क्या ? न तो वह आडी है न मुर्गा।

आडीए मयणमत्ता ए रामिओ वण कुक्कुडो।
तेण सपिल्लओ जाओ न च आडी न कुक्कुडो ॥७५॥

कामोन्मत्त आडी ने वन में मुर्गे के साथ रमण किया। उसके जो पिल्ला हुआ वह न आडी है न मुर्गा है।

सो चेव य घरवासो नवरिं परियत्तिओ य सो वेसो।
किं परियत्तिय वेसं विसं न मारेइ खज्जंतं ॥७६॥

अगर वह (प्रव्रजित) गृहवास करता है तो उसने केवल वेष ही बदला है। (यदि उसने दु:शील नहीं छोड़ा तो) केवल वेष बदलने से क्या हुआ ? क्या [illegible] खाने से नहीं मारेगा ?

सव्वो भणइ च देसे मज्झ कुल उत्तमं च विउल च।
कह से पत्तियव्व सीलेण विसवयतस्स ॥७७॥

देश में सभी लोग कहते हैं कि मेरा कुल उत्तम और विपुल है (परन्तु) शील से विपरीत मार्ग पर चलने वाले उस व्यक्ति के (उत्तम व विपुल कुल की) प्रतीति कैसे हो ?

सव्वाओवि नईओ कमेण जह सायरम्मि निवडति।
तह भगवई अहिंसा सव्वे धम्मा (समज्ज ति) ॥७८॥

सभी नदियाँ क्रमशः समुद्र में जाकर गिरती हैं, उसी प्रकार भगवती अहिंसा में सभी धर्म समा जाते हैं।

तो भे भणामि सव्वे जाय ति समागया मम सुणेह।
चरह परलोग हियय अहिंसा लक्खणं धम्म ॥७९॥

तो जितने लोग मेरे समागम मे आए उन सबसे कहता हूँ, सुनो, पर लोक के लिये हितकर अहिंसा लक्षण वाले धर्म का आचरण करो।

तो अरय विरय विमले सच पहे देव दुंदुहि निनाए।
सग्गमि चिरं वसिहह सुचरिय चरणाचरिह धम्म ॥८०॥

तो रज रहित विरत निर्मल सत्य पथ में सच्चरित्र संयम-धर्म का आचरण कर देव दुंदुभि निनाद से चिरकाल तक स्वर्ग में वास करो।

नाणंकुसेण रुंधह मण हत्थि उप्पहेण वच्चंत।
मा उप्पह पडिवन्नो सीलाराम विणासिज्जा ॥८१॥

ज्ञानरूपी अंकुश द्वारा मन रूपी हाथी को उन्मार्ग में जाने से रोको अन्यथा वह उत्पथ गामी होकर शील रूपी उद्यान को नष्ट न कर डाले।

॥ इति नाना वित्तक प्रकरण समाप्त ॥

बालावबोध प्रकरण

पणमवि जिणवइ देउ गुरु, अनु सरसइ सुमरेवि।
धम्मुवएसु पयंपियइ, सुणि अवहाणु करेवि ॥१॥

जिनेश्वर देव और जिनपतिसूरि गुरु को प्रणाम करके और फिर सरस्वती का स्मरण करके धर्म का उपदेश कहा जाता है, सावधान होकर सुनों।

दुलहउ माणुस जम्म लहि, जे नवि धम्मु करंति।
ते असरण दुह-सय कलिय, चिरु संसारि भमंति ॥२॥

दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर जो धर्म नही करते वे शरण से रहित तथा सैकड़ों दुःखो से युक्त होकर चिरकाल तक ससार मे भटकते हैं (मोक्ष प्राप्त नही करते)।

जुव्वणि भुजउँ विसय-सुहु, वुड्ढउ धम्मु करेसु।
एहउँ बाल पयंपियउ, मा चि (त्ते) वि धरेसु ॥३॥

यौवनकाल में विषयों के सुख को भोग लू, वृद्ध होने पर धर्म करू गा— ऐसे बाल जीवो (अज्ञानियों के) के कथन को कभी चित्त में मत धरो।

वायाहय-धयवड समउ, जीविउ चंचलु जेण।
बालत्तणि वि विवेइ जण, धम्मि पयट्टहि तेण ॥४॥

क्योंकि जीवन पवन से आन्दोलित ध्वजा के पट के समान चचल है इसलिये विवेकी पुरुष बचपन में ही धर्म मे प्रवृत्त हो जाता है।

इह जुव्वण अविवेय - घरु, सव्व - अणत्थ - निहाणु।
एइण जो न विडंबियउ, सो पर भुयणि पहाणु ॥५॥

यह यौवन अविवेक का घर और सब अनर्थों का निधान (स्थान) है। इसके द्वारा जिसकी दुदशा नही हुई, केवल वही ससार में प्रधान हैं।

जाव न पीडइ देहु जर, जाव न बाहहिं वाहि।
जा इंदिय सुत्थत्तणउँ, ता सद्धम्मु पसाहि ॥६॥

जब तक जरा देह को पीडित नही करती, जब तक व्याधियाँ उसे व्याधित नही करती और जब तक इन्द्रियो की स्वस्थता है तब तक सद्धर्म का साधन करो।

पिय-जणु जुव्वणु धणु सयणु, सयलु वि लोइ असारु।
नरइ पडंतह पावियह, नवि केणइ साहारु ॥७॥

प्रिय-जन, यौवन, धन, स्वजन सभी इस लोक में सार रहित हैं। नरक में गिरते हुए पापी मनुष्य को किसी से सहारा नही मिलता।

घर वावारि वि मोहियह सयलु समप्पइ जम्मु।
खणुवि न पावहिं पावयर, जित्थु ए साहहि धम्मु ॥८॥

मुग्ध प्राणी गृह व्यापार में सारा जन्म समर्पण कर देता है पर उस पापी को एक भी ऐसा क्षण नहीं मिलता जिसमें वह धर्म की साधना कर सकें।

थेवउ आउ सुतुच्छु सुहु, पय पय आवय-ठाण।
दुक्कड फलु अइ कडुयर, सधम्मु करेसु सुजाण ॥९॥

आयु थोड़ी है, सुख अत्यन्त तुच्छ है, पग पग पर आपत्तियो के स्थान हैं। दुष्कर्मों का फल अत्यन्त कड़वा होता है। हे सुजान! इसलिये धर्म करो।

जिणि निज्जिय राणइ रिवु, जो इंदिहिं कय सेवु।
निम्मलु नाणु पईवु जसु, सो पणमिज्जइ देवु ॥१०॥

जिसने रणक्षेत्र मे भाव-शत्रुओं को जीत लिया, जिसकी इन्द्र सेवा करते हैं, जिसके निर्मल ज्ञान रूपी दीपक है उस देव को प्रणाम करो।

पंच महाव्रती गुरु

पंच महव्वय-भूसियउ, परिपूरिउ सुगुणेहिं।
उवसम-निहि सुय-नीरनिहि, गुरु लब्भइ पुन्नेहिं ॥११॥

पाँच महाव्रतों से भूषित, सद्‌गुणो से परिपूर्ण, उपशम के निधान और श्रुतज्ञान रूपी जल के समुद्र ऐसे गुरु पुण्यो से मिलते हैं।

सव्व जिएसु वि दय करहिं, एस सधम्मह मूलु।
एय विहूणउ तवु जवु वि, सव्वु वि भव-अणुकूलु ॥१२॥

सव जीवो पर दया करते हैं—यह सद्‌धर्म का मूल है। इसके विना जप और तप सभी भव के अनुकूल हैं—ससार सागर में भ्रमण कराने वाले हैं।

मृषावाद त्याग

अलियउँ वयणु न भासियइ, दोस सहस्स-निवासु।
जेण हणिज्जइ सुह-निलउ, सव्वत्थ वि वीसासु ॥१३॥

असत्य वचन नहीं वोलना चाहिये जो हजारो बुराइयो का घर है, —इससे सुख का घर विश्वास सर्वथा नष्ट हो जाता है।

चोरी

इह पर लोइ विडवणहँ, विवि जइ जइ बीहेहि।
ता कइयवि पर धण हरणि, म जिय मणु विविहेहि ॥१४॥
इस लोक और परलोक में यदि विडम्बना होने से डरते हो तो हे जीव !
पराये धन के हरण में कभी भी मन को मत लगाओ।

परस्त्री गमन

जइ रुप्पा (? ग्घा) डण कुड्डियउ, पुणु पुणु दुग्गइ दारु।
ता पइ दिणु सच्छद भइ जिय अहिलसु पर दारु॥ १५ ॥
यदि बारबार दुर्गति के द्वार को खोलने का शौक (कोड) है तो हे
जीव ! प्रतिदिन स्वच्छन्दतया परस्त्री की अभिलाषा करो।

परिग्रह परिमाण

जइ सोक्खिन्नुहि निब्वि नु तुहु जइ ससारि कज्जु।
ता परिगहि अ पमाणि जि (थ , कुइरु निरतर रज्जु ॥१६॥
यदि तुम्हे (आत्मिक) सुख से निवृत्ति और ससार भ्रमण से ही काम
है, तो हे जीव ! अपरिमित (बिना परिमाण किये) परिग्रह में चिरकाल
अनुराग करो।

रात्रिभोजन

राई भोयणु परिहरहु निय मणि नियमु धरेहु।
जेण उवज्जिय सयल गुण, सिव दिव लच्छि वरेहु ॥ १७ ॥
रात्रि भोजन को छोड़ दो, अपने मन में नियम धारण कर लो, जिससे

कि सब गुणो को उपार्जित कर मोक्ष रूपी दिव्य लक्ष्मी का वरण कर सको।

रत्तिहिं हिंडहिं रयणियर, भुक्खिय रंक-समाण।
तहिं उविट्ठउँ ते जिम्वहिं, जे निसि जिम्वहिं अयाण ॥ १८ ॥

रात में भूखे रजनीचर (राक्षस) रकों के समान फिरते हैं, जो अज्ञानी रात में भोजन करते हैं वे उनका जूठा भोजन करते हैं।

मेह पिवीलिय उवहणइ, मच्छिय वम्वणु करेइ।
जूयलोय स्संजणइ, कोलिउ कोढु वि होइ ॥ १९ ॥

(भोजन में) चीटियाँ आने से बुद्धि-मेधा का नाश होता है, मक्खी वमन करा देती है, जुओं के भक्षण से जलोदर हो जाता है और कोलिक से कोढ भी हो जाता है।

लग्गिइ गलियइ दुक्खयरु, कंटउ दारुण दारु।
भक्खिउ बालु वि तक्खणिण, सरु भंजइ अइचारु ॥ २० ॥

गले में काँटा या लकडी लग जाने स भयकर कष्ट देता है और केस-बाल खाने से तत्काल स्वरभग (कण्ठ चीरन) हो जाता है।

भुजिज्जंतउ वंजणिहिं, समु अलि विंथ [?ध] इ तालु।
निसिभोयणु बहुविहु हवइ, आमय जालु-करालु ॥ २१ ॥

भोजन करते हुए यदि व्यजन-तरकारी के साथ बिच्छू आ जाय तो वह तालु वीध देता है। यों रात्रि का भोजन अनेक प्रकार से रोगो का भयकर जाल है।

दिवसि वि जे अइ-सुहुम जिय, अइ-जत्तिण दीसंति।
कुंथु पभिइ दीवाइ सुठि, ते निसि किम्व दीसंति ॥ २२ ॥

जो सूक्ष्म जीव दिन में भी बड़े यत्न से दिखायी पड़ते हैं वे कुंथु प्रभृति जीव दीपक का अच्छा प्रकाश होने पर भी रात्रि में कैसे दिखायी दे सकते हैं।

जइ किर केवल नणिणु वि, निसिभोयणु न करंति।
ता छउमत्थ पमायपर, किह दूरिण न मुयंति ॥ २३ ॥

जब कि केवलज्ञानधारी भी (जिनको जीवाजीव का प्रत्यक्ष ज्ञान है) रात्रि भोजन नहीं करते तो छद्मस्थ प्रमादी जीव पहले से क्यों नहीं छोड़ते ?

संसत्तहिं आहार निसि, जिय तिण सम रस वण्ण।
ते जाणंता किम गिलहिं, जे नर सहिय सकण्ण ॥ २४ ॥

रात्रि के संसर्ग से आहार में उसी के सदृश वर्ण रस वाले जीव उत्पन्न हो जाते हैं। यह जानते हुये वे पुरुष कैसे गले उतार सकते हैं, जिनके हृदय हैं और जिनके कान हैं।

जे रयणिहिं दियहि वि अवुह अच्छहिं आहरम [ा] ण।
ते रक्खस धर भार यर अहवा पसु अ विसाण ॥ २५ ॥

जो मूर्ख रात दिन (के विवेक विना) भोजन करते ही रहते हैं वे पृथ्वी पर भार स्वरूप राक्षस हैं अथवा बिना सींगों के पशु हैं।

जे विणु मिल्लिवि मूढ-मइ, रयणिहिं परिभुंजंति।
ते कप्प-द्रुमु अवगणिवि, विस विल्लिहिं रज्जंति ॥ २६ ॥

जो मूर्ख बुद्धि वाले दिन को छोड़ कर रात में भोजन करते हैं वे कल्प-वृक्ष का तिरस्कार करके विष की बेल से अनुराग करते हैं।

जे निसि-भोयणि रइ करहिं, ते मय हुति सियाल।
अहि विच्छिय गोहा नउल, घूयइ काय विडाल॥ २७॥

जो रात्रिभोजन से प्रेम करते हैं वे मर कर गीदड बनते है। अथवा साँप विच्छु या गोधा या नकुल या उल्लु या काक या बिल्ली होते हैं।

निसि-भोयणि निरयहँ नरहँ, दुलहउ परि भवि होइ।
सयणु असणु धणु कणु वसणु, जिह अंधह वर जोइ॥ २८॥

रात्रिभोजन मे निरत मनुष्य को परभव में शयन, भोजन, धन-धान्य, वस्त्र दुर्लभ होते हैं, जैसे अन्धा उत्तम वस्तु को नही देख सकता।

दिणु अवहीरि विहावरिहिं, जे धम्मत्थु जिम्वति।
ते संति वि पङ्कलि अबुह, ऊसरि बीउ ववंति॥ २९॥

दिन को छोडकर जो रात्रि में धर्म मान कर भोजन करते हैं वे मूर्ख मकर्दम उर्व्वरा भूमि होते हुए भी ऊसर में बीज बोते हैं।

जे विरमहिं निसि भोयणहँ, वंछिय सिव-पय-वास।
तह धन्नह सुविवेइयह, अद्धव जम्मुववास॥ ३०॥

जो शिव-पद-वास की वाछा वाले (मोक्षाभिलाषी) हैं वे पुरुष रात्रिभोजन का त्याग करते हैं। वे सुविवेकी धन्य हैं और आधे जन्म के उपवासो का फल प्राप्त करते हैं।

जं सव्वन्नुहिं वारियउ, सत्थि अणेय-पयारु।
जम्म-दुगिवि निसि-भोयणह, तसु सोहणु परिहारु॥ ३१॥

जो शास्त्रो में अनेक प्रकार से सर्वज्ञो ने मना किया है, उस रात्रिभोजन का त्याग करना दोनो जन्म के लिए शोभनीय है।

जहिं परिचत्तउ निसि असणु जाणेविणु परमत्थु।
तह पर अप्प सुहावहह, भवि भवि मंगल मत्थु॥ ३२॥

परमार्थ को जान कर जिन ने रात्रिभोजन का त्याग कर दिया उन स्व पर सुखदायकों का भव भव में कल्याण हो।

मदिरापान

मज्जु विहोडइ मइ विहवु जिव कंजिउ वर खीरू।
तेण विहूणउ दुहु लहइ, तो स पियइ न धीरु॥ ३३॥

अच्छे दूध में कांजी पड़ जाने की भाँति मद्य, मति-वैभव को नाश कर देता है। उसके बिना दुख पाता है तो भी धीर पुरुष उसे नहीं पीता।

खण मित्तेण वि जो हरइ, जाया जणणि विहाउ।
भूरि विडवण कुल भुवणु, सो कह होउ सुसाउ॥ ३४॥

स्त्री और माता के भेद विवेक को जो क्षण मात्र में ही हरण कर लेता है एवं कुल और संसार में खूब विडम्बनादायक है वह मद्य कैसे सुस्वादु हो सकता है।

असमंजस चिट्ठिय जणइ, मज्जु अणेय पयार।
जिहिं दिट्ठिहिं विसिट्ठयण लज्जहिं नट्ठवियार॥ ३५॥

मद्य अनेक प्रकार की असमंजस अनुचित चेष्टाओं का जनक है। जिसके प्रभाव से विशिष्ट पुरुष भी विचारहीन होकर लज्जित होते देखे जाते हैं।

समु दमु संजमु-तवु नियमु, विहलइ सयलु वि मज्जु।
मोहइ वियलइ इ वियइ हालाहलु जिम्व सज्जु॥३६॥

मद्य से खम, दम, सयम, तप और नियम सभी गुण नष्ट हो जाते हैं और मोह से इन्द्रियाँ विकल हो जाती है जैसे हलाहल विष का सद्य प्रभाव हो।

मइरा मइ मोहिय मइहिं, जायव कुमर वरेहिं।
दीवायणु खलियारियउ, बहु दुवयण पहरेहिं ॥ ३७ ॥

श्रेष्ठ यादवकुमारो ने मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर अनेक दुर्वचनो के प्रहार द्वारा द्वीपायन ऋषि को आचार से स्खलित कर दिया।

दे वी हुइण सकोवणिण, धण जण कणय समिद्ध।
तेण सदड्ढी वारवइ, तइ लोक्के वि पसिद्ध ॥ ३८ ॥

उसने क्रुद्ध होकर धन, जन और कनक से समृद्ध द्वारिका नगरी को दग्ध कर दी यह बात लोक में भी प्रसिद्ध है।

जो मज्जह चुलउ वि पियइ, सज्जिर अणुवहु जंतु।
भव सायर गभीरि चिरु, सो मज्जइ मज्झंतु ॥ ३९ ॥

मद्य का चुल्लू भर भी जो पीता है वह मोहित होकर सुधबुध खो कर चिरकाल तक गहरे भव-सागर म डूवा रहता है।

मांसाहार

दुग्गइ पहि थिरु सवलउं, दीसंतउ वीभच्छु।
मायंगह अविसेसयरु, मंसु न खाइ जु सच्छु ॥ ४० ॥

जो सज्जन हैं वे दीखने में वीभत्स और दुर्गति-मार्ग के स्थिर पाथेय, चाण्डाल-कर्म के समकक्ष मास को कभी नहीं खाते।

कथा यत्तु जु वन्नियइ, सुर भोयह तम सव्वु।
मंसु जु भक्खउ' नर तिरिय, निग्घिण ताह नसच्चु ॥४१॥

देवताओ के भोग (बलि) आदि का जो कथाओं में यत्नपूर्वक वर्णन करते हैं वे, तथा जो पुरुष पशु-मांस का भक्षण करते हैं वे सब निर्दयी और असत्यशील हैं।

जसु खाएवा मसु मइ डाइणि जिम्ब अइ किन्ह।
दिट्ठउ दिट्ठउ जीवडउ, मारेवा तसु इच्छ ॥ ४२ ॥

जिसकी मांस खाने में ही मति रहती है वह डायन की भाँति अत्यन्त दुखी है और जीवो को देख देख कर उन्हें मारने की इच्छा करता है।

सव्वुवि जिउ सुक्खइ महइ, तइ कउ विण धम्मेण।
सो सव्वत्थ विवन्निवइ, सिज्झइ दय करणेण ॥ ४३ ॥

सारे जीव ही सुख चाहते हैं पर धर्म किये बिना वह कैसे प्राप्त होगा? वह सब अर्थ विपन्न जन पर दया करने से सिद्ध हो जाता है।

जे रसणि [इ] दिय लुपका, मंसासणि आसत्त।
ते हिंसक प्पलया सरिस अइ दूरिण परिचत्त ॥ ४४ ॥

जो जिह्वा इन्द्रिय में लम्पट हुए कर मांस-भोजन में आसक्त होते हैं वे हिंसक प्रलयकारी के सदृश हैं, अत्यन्त दूर से ही उनका परित्याग करो।

भक्खत्ता इर वत्थ जण, सत्थ निवधण दिट्ठ।
तिण ससत्त अणत जिउ, मसु न खाइ विसिट्ठ ॥ ४५ ॥

इतर वस्तु को खाते हुए भी मनुष्य शास्त्र मर्यादा देखता है तो अनन्त जीवो से ससक्त मांस को विशिष्ट पुरुष खाता ही नहीं।

कह मन्नइ इत्थि तणई, तुइइ माइ पियाइ।
भिन्नउ भिन्नउ आयरणु, जुत्तउ होइ पियाइ ॥ ४६ ॥

स्त्रियों में भी माता और प्रिया को समान कैसे मानेंगे ? (माता एव) प्रिया के साथ भिन्न-भिन्न आचरण ही युक्त होता है।

तेण जु केइवि इउ भणहिं, धन्नु वि पाणिहिं अंगु।
मंसु वि तंपिव भक्खणिउं, एउ न जुत्तिहिं चंगु ॥ ४७ ॥

वैसे ही कई लोग यह कहते हैं कि धान्य भी प्राणियो का अग है, उसी प्रकार से मास भी भक्ष्य है, पर यह युक्ति उत्तम नहीं।

पाणंगुवि दुद्धाइ इह, सव्विहि इट्ठउ भक्खु।
लोहिय हड्डु प्पभिइ पुणु,किण कारणिण अभक्खु ॥४८॥

प्राणी के अग से प्राप्त दुग्ध आदि पदार्थ सब के लिए इष्ट भक्ष्य हैं तो फिर लोहू और हड्डियाँ आदि किस कारण अभक्ष्य है ?

बहुह वि एगिंदियहं बहु न पलासण सम रुद्द।
घण कोडा कोडिवि जलह, किं अवहरइ समुद्दु ॥४९॥

बहुत से (धान्यादि के) एकेन्द्रिय जीवो का वध होते हुए भी मास भोजन के सदृश रौद्र परिणामी नही, कोटा कोटि मेघ भी क्या समुद्र से जल का अपहरण कर (खाली कर) सकते हैं ?

जो काऊण वि झाणु तवु, मंसासणि मणु देइ।
सो गउ जिम्व मज्जेविलहु, तणु रेणुहिं गुडेइ ॥५०॥

जो ध्यान व तप करके भी मास भोजन की ओर मन लगाता है वह सांड की तरह स्नान कराने पर भी तुरन्त देह को धूल में आलोटित करता है।

सव्विहिं तित्थिहिं जत्तकय, सव्वइं दाणइं दिन्न।
जिण आजम्मु दि आयरिय, मंस निवित्ति पइन्न ॥५१॥

उसने सब तीर्थों की यात्रा कर ली, उसने सब दान दे दिये, जिसने आजन्म की आचरण में मांस से निवृत्ति प्राप्त कर ली।

मक्खन

अन्तमुहुत्त परेण जहिं, सुहुमइ जीवहँ रासि।
सम्मुच्छहिं म असिउ मण लोणिउ मायरि पासि॥५२॥

अन्तमुहूर्त मात्र में जहां सूक्ष्म जीवों की राशि सम्मूर्च्छित उत्पन्न होती है उस मक्खन को भक्षण करते हुए अपने को भव पाश में मत डालो।

एगस्सवि जीवह वहणि, जायइ पाव बहुत्तु।
ता जिय पिंड सरुवु इहु, बुह भक्खणइ अजुत्तु॥५३॥

एक ही जीव की हत्या में बहुत पाप होता है तो जीवों के पिण्ड स्वरूप यह (मक्खन) बुधजनों के लिए भक्षण करना अयुक्त है।

एगह नियं जीवह तणिण, जे जिय कोडि वहति।
ताह अणंता भव गहणि, जम्मण मरण हवंति॥५४॥

एक अपने जीव के लिए जो करोड़ों जीवों का वध करते हैं, उन्हें जन्म मरण कर अनन्त भव ग्रहण करने होते हैं।

जइ पत्तउ जिणवर वयणि, तुहु जइ कज्जु सुहेहिं।
ता होइवि करुणा परमु, मा लोणिउ भक्खेहिं॥५५॥

यदि तुम्हारा जिनेश्वर के वचनों में विश्वास है और यदि तुम्हें सुखों से सरोकार है तो करुणा पर होकर मक्खन का भक्षण मत करो।

मधु

बहु जिय घण घाउब्भवउ लाला जेम्व विलीणु।
किम मक्खइ मक्खिउ वि बहु सुस्सावउ सुकुलीणु॥५६॥

बहुत से जीवों के घात से जो उत्पन्न होता है, उस मक्खियों की लाला से ओत-प्रोत मधु-शहद को सुकुलीन और सुश्रावक कैसे भक्षण कर सकता है ?

इक्किकहु कुसुमहु पियवि, रसु मक्खिय जु वमंति।
महु उच्चिट्ठउ सिट्ठ-जणु, तं दूरिण उज्झं (?ज्झं)ति ।।५६।।

एक-एक फूल के रस को पीकर मक्खिया वमन कर देती है। उस उच्छिष्ट मधु को शिष्टजन दूर से ही त्याग देते हैं।

उसह कएवि जु भक्खियउ, नरयह कारणु होइ।
तसु परिणामि सु दारुणहु, महु सम्मुहु वि म जोइ ।।५८।।

औषधि के निमित्त भी जो (मधु) खाया जाय वह नरक का कारण होता है। उसका परिणाम बहुत भयकर है, अतः मधु के सामने भी मत देखो।

सुहि महुरं नयणहं सुहउं, अइ कडुयं परिणामि।
हालाहलु जिम्व परिहरहु, महु इम भणइ सुसामि ।।५६।।

सुखकर है, मधुर है, आखोंको शुभकर है, पर परिणाम में अत्यन्त कटु है। हलाहल के समान मधु को छोड दो, ऐसा श्रेष्ठ स्वामी तीर्थङ्कर कहते हैं।

ए चारि वि जिणवइ समइ, विगइ उपडि कुट्ठाउ।
जो वज्जेसइ वज्जिहिइ, सो चउगइ भव ठाउ ।।६०।।

जिनेश्वर ने शास्त्रो में इन चारो महाविगयों (मास, मदिरा, मधु, मक्खन को दुर्गतिदाता कहा है। इन्हें जो वर्जित करेगा वह चारों गति के भव-भ्रमण स्थान को भी वर्जित करेगा।

दक्खा पाणय लद्दुएहिं मच्छंडिय सुयएहिं।
एव पार्यहिं अन्नहि वि, किं मज्जाइहिं तेहिं ॥६१॥

लदे हुए द्राक्षगुच्छ, मिश्री, श्रेष्ठ घृतादि अन्य उत्तम पेय है फिर मद्यादि में क्या रखा है ?

अभक्ष्य—अनन्तकाय भक्षण

मिल्हि पिलुखइ पिप्पलइ, कउंबर फलाइ।
वड उबर साहीण तइ, किमि कलयल सयलाइ ॥६२॥

बड़, पीपल, गूलर, पिलखु व कालुम्बर (कठूमर) इन पाँच उदुम्बर फलों को छोड़ दो जो निःसार हैं एवं उनमें बहुत सी कृमियाँ किलबिलाती हैं।

छड्डिउ वि भक्खतउ अवरु, अरहन्तवि समयन्नु।
पचुंबर सभव फलइ, कोइ न खाइ सयणु ॥६३॥

शास्त्रज्ञों और अर्हन्तों ने खाना तो दूर रहा, जिन्हें स्पर्श करना भी बुरा बतलाया है उन पाँच उदुम्बरों से उत्पन्न फलों को कोई समझदार नहीं खाता।

बीहहिं जेण तहु भयहु, सुमुणिय पवहण तत्त।
सव्व अणंत काइयइ ते भक्खइ न सुसत्त ॥६४॥

प्रवचन के तत्व को ज्ञात कर जो भव भ्रमण से डरते हैं वे सत्वशील पुरुष सभी प्रकार के अनन्तकायों का भक्षण नहीं करते।

मिस्सइ आमिण गोरसिण वियलइ मुयह सुदूरि।
जेण तहिं दिट्ठा केवलिहिं सुहुमा जिय अइभूरि ॥६५॥

द्विदल (दालवाले अन्न) को (कच्चे) गोरम (दूध-दही-छाछ के साथ मिलाकर (खाना) दूर से त्यागो, जिसमें कि केवली भगवान ने अत्यन्त सूक्ष्म जीव देखे हैं।

जं अन्नुवि फलु फुल्ल दलु मीसिउ जतु सएहिं।
संधाणं ससत्तु तह धम्मिय दूरि मुएहिं ॥६६॥

जो और भी सैकडो जन्तुओ से मिश्रित फल-फूल-दल हैं एव आचारादि जो जीवादि सयुक्त हैं उनको हे धार्मिक। दूर ही त्याग दो।

द्यूत-क्रीड़ा

जूय रमंतिहिं कुलु मइलिज्जइ।
मुच्चइ सच्चउं जणि लज्जिजइ॥
किज्जइ सोउ मुकउ मिल्लिजइ।
भवण दविणु सयलुवि हारिज्जइ ॥६७॥

जूआ रमनेवालो का कुल मलिन होता है, सत्य से परित्यक्त होता है, लोगों में लजित होता है ? शोक-चिन्ता करता है, गिरवी (?) रखता है व भवन द्रव्य आदि सब हार जाता है।

दाणु न दिज्जइ भोग न भुंजहिं।
मुय पियय मपिय माइ मुसिज्जहिं॥
देव गुरु वि तिण सम वि गणिज्जहिं।
जुत्ताजुत्तहिं नवि याणिज्जहिं ॥६८॥

दान नही देता, भोग नहीं भोगता, प्रियजनों से भी अप्रिय होकर त्यक्त व शोषित होता है। देव और गुरु को तृण के समान गिनता है उचित अनुचित को नही जान पाता।

अप्पणु कोउअइ वारयइज्जइ।
दुग्गइ सरलइ प(प)हिं वञ्चिज्जइ ॥
धिइ मइ कित्तिवि दूरि चइज्जहिं।
ता धम्मिय तहिं मा रुज्जिज्जहिं ॥६९॥

अपने कौतुक से (द्यूत व्यसनी व्यक्ति) दुर्गति के मार्ग को सरल कर ठगा जाता है, धृति, मति और कीर्ति को दूर ही त्याग देता है, तो हे धार्मिक ! उसे मत करो।

वेश्यागमन

तासु न सच्चु न सोउ न सजमु।
सीलु न विज्ज न न इंदिय दमु ॥
तिण अप्पउं कि विरइ दुग्गइ छूढउ।
जा पण रमणि रमइ अइ मूढउ ॥७०॥

तब तक न सत्य है न शौच, न संयम, न शील, न विद्या, न इन्द्रिय दमन जब तक अपने को दुर्गति का स्पर्श करानेवाली वेश्या से वह अत्यन्त मूर्ख रमण करता है।

जा जालोय जिम्व गेहहु देहह।
देविणु रुहिरु आकडइ बहुलहु ॥
सुकुमारत्तणु पयडवि गुण गणु।
जीवहु सा किम्व रंजगु बुहमणु ॥७१॥

जो जौंक की भाँति देह में चिपक कर शरीर का बहुत सा रुधिर खींच

लेती है। सुकुमारत्वादि गुण गणो को दिखा कर वह हत्यारिणी (वेश्या) कैसे समझदार पुरुषो का चित्त प्रसन्न कर सकती है?

आवय आठहिं जहिं आसत्तह।
पसरइ अजसु तिलोइ असत्तह॥
सव्वत्थ वि रह गरह पयट्टइ।
तहिं वेसहिं किव रागु विसट्टइ॥७२॥

जिस में आशक्ति से आठो आपदाएँ आती हैं, आसक्ति से तीन लोक में अपयश फैलता है। (इसके कारण लोक) सर्वत्र निन्दा गर्हा में प्रवृत हो जाते हैं उस वेश्या से विशिष्ट जन कैसे प्रेम कर सकते हैं?

दुवियड्ढि (? य चुवि) य नड भंडहिं।
नयणिहिं अकयत्थहिं जे रंडहिं॥
नीलुप्पल सूमाले (हिं गालेहिं)।
ते विसूर वन्निजहिं बालेहिं॥७३॥

जो दुर्विदग्धा—स्वच्छन्दी नट-विट और भाँडो द्वारा चुम्बित व अकृतार्थ नयनों को लडाती रहती है, उन उच्छिष्ट वेश्याओं के नीलोत्पल जैसे नेत्र और सुकुमार कपोल अज्ञानियों द्वारा ही वर्णित होते हैं।

राउ न जसु मयरद्धय रूविवि।
कुट्टिवि, तोसइ धणइं निरूविवि॥
सग्ग पवग्गण वग्गह अग्गल।
वेस स ढोपइ दुह सय अग्गल॥७४॥

मकरध्वज (कामदेव) के सदृश रूपवान में भी जिसे प्रेम नहीं, धनवान कुरूप व कुष्टी को भी जो सन्तुष्ट करती है, स्वर्ग व अपवर्ग मोक्ष मार्ग की अर्गला सदृश वेश्या सैकड़ों दुखों को देने में अग्रणी है ।

सिरि हिरि कंति धिइ मइ कित्ती ।
दंति संति दय सज्जण मत्ती ॥
छड्डहिं कंत पणंथि पसत्तउ ।
नावइ ईस वसेण पमत्तउ ॥७५॥

श्री, लज्जा, कान्ति, धृति, मति, कीर्ति, दम, शम, सज्जन मैत्री (स्त्री) को वेश्यासक्त कान्त छोड़ देता है और ईर्ष्यावश वेदरकारी से (घर भी) नही आता ।

सज्जणु उत्तमु कुल सभूयउ ।
पर गुण दूषण घोस णि मूयउ ॥
पूइउ पंडिउ गणयहिं रत्तउ ।
जइता दासत्तणु धुवु पत्तउ ॥७६॥

स जन, उत्तमकुल में उत्पन्न, पराये गुण-दोषो की आलोचना, उद्घोषणा में मूक, सबसे पूजित पण्डित भी यदि गणिका से आसक्त है तो उसे निश्चय ही दासत्व प्राप्त हो गया ।

अग्गि जले जिम तणु सतावइ ।
कायम्बर जिम्व मणु मोहावइ ॥
छुरिया जिम्व जा देहु वियारइ ।
सा कुलहू किम्व चित्तु वियारइ ॥७७॥

शिकार वैर की परम्परा का कारण है, शिकारी जीवों का विदारण करता है। जिस मूढ़ ने शिकार खेलना प्रारम्भ किया—परिणाम में उसने नरक गति की प्राप्ति को दृढ़ कर लिया।

रन्नि वसहिं जि तण चरहिं, फुल्लिण कुवि न हणंति।
तह मय मारणु आयरवि, किह भडवाउ वहंति ॥८१॥

जो जगल में रहते हैं, तृणों को चरते हैं और फूलों को भी कभी नष्ट नहीं करते, उन मृगों का वध करके वीर नाम को कैसे धारण करते हैं।

अप्पा पर अवयारयरि, दीसइ फुडु पारद्धि।
विहलइ सयलइ सुचरियइ पोसइ पावह रिद्धि ॥८२॥

शिकारी अपना और पराया अपकार करने वाला स्पष्ट दिखायी पड़ता है वह समस्त सच्चरित्रों या निर्दोष (घास) चरनेवालों को व्याकुल करता है और पाप की समृद्धि का पोषण करता है।

थिरइय सयलवि जिहिं, खट्टिग साल विसाल।
तह भव-वणि जम्मण-मरण, होसइ दुह दुह-माल ॥८३॥

जिसने सवत्र विशाल कसाईखाना निर्माण किया है, उसे भवरूपी जगल में जन्म और मरण होगा जो दसों दुखों की माला है।

पूयउ देवय चरउ तवु वियरउ दाणु पहाणु।
जइ पारद्धिहिं किम्वइ मणु, ता सयलुवि अपमाणु ॥८४॥

देव को पूजो, तप का आचरण करो, प्रधान दान को दो, पर जो शिकार खेलने में मन है तो यह सब अप्रमाण मानो।

आहेड़िय जूयारियहँ, थुव सुह उवरि अभाउ।
कह मन्नहह भोगवि मुयवि, घल्लहिं दुहि निउकाउ॥८५॥

शिकारी और जुआरी दोनों को थोडे सुख पर अभाव अधिक होता है। निश्चय ही वे (सुख) भोग कर मरने पर अपनी काया को दुख में डालते हैं।

अवयारि वि जे उवयरहिं, ते नर धर लंकारु।
मज्जुत्थह जे असु हरहिं, ते धुउ धरणिहिं धा(भा)रु ॥८६॥

अपकारी के प्रति जो उपकार करते हैं वे मनुष्य पृथ्वी के अलकार है। जो मृग-यूथ के प्राण हरते हैं, वे निश्चय ही पृथ्वी के भार हैं।

जे पंचिंदिय वहु करहिं, ते निग्घिण चंडाल।
सुहु एक्कह वि न इंदियह, भवि भवि लहइ ति आल॥८७॥

जो पचेन्द्रिय जीवों का वध करते हैं वे निर्दयी चाण्डाल हैं। वे एक भी इन्द्रिय का सुख नहीं (पाते) और भव-भव में वे कलकित होते हैं।

जइ अप्पइं सव्वइ दुहइं, तुहु समुदियइ दि दिक्खु।
वावारंतर परिहरिवि, ता आहेडउ सिक्खु ॥८८॥

यदि अपने को सम्पूर्ण प्रकार से सव दुखों से दुखी देखना चाहते हो तो दूसरे कामों को छोड कर शिकार करना सीखो।

सच्चरित्र महात्मा

धन्न ति वन्नउं धर वलय, तिहुयण जण-नय-पाय।
जह सव्वहँ जीवहँ वहहु, विरया मण वय काय ॥८९॥

उन्हें भूमडल में धन्य कहता हूँ और तीन भुवन के लोक उनके चरणों में नत हैं जो मन वचन और काया द्वारा जीव वध (हिंसा) से सर्वथा निरत हैं।

सच्च मिउ हिउ धम्मु परु, आलोचिउ जि वयंति।
लहु दुह सुहासहिं पूरियउ ते भव-वासु वयंति ॥९०॥

सत्य, हित, मित और धर्म पर आलोचित जो चलते हैं, वे अल्प दुख और अधिक सुखपूर्ण भव वास बिताते हैं।

जह मणि कचण लडुवल, समभावह सुपवित्तु।
चि (? चि)त्तु विरत्तउ चोरियहु,वह वन्दउ सुचरित्तु॥९१॥

जो मणि कंचन और ढेले पत्थर के प्रति समभाव वाले अति पवित्र हैं और जिनका चित्त चोरी से विरक्त है, उन सच्चरित पुरुष को वन्दना करो।

मेहुण सेवणि जाहँ मणु, सव्व पयारि निवित्तु।
सचराचर हु जगवलउ, तहिं निम्मिउ सुपवित्तु ॥९२।

मैथुन के सेवन में जिनका मन सब प्रकार से निवृत्त हो गया है, उनने इस सचराचर प्राणियों वाले जगत को अतीव पवित्र बना दिया है।

धम्मोवगरण मेत्त धण जे परिगहु न करिंति।
भविय जण आणंदयर ते गुण रयण धरिंति ॥९३॥

धर्मोपकरण मात्र धन को रखने वाले जो परिग्रह को नहीं रखते वे भविक जनों को आनन्द करने वाले गुण रत्नों को धारण करते हैं।

ता राइहिं अब्भव हरइ, जो चयहिं आहारु।
नरसिरि सुरसिरि सिद्धसिरि, (? सुख)हह सु पर आहारु ९४।

जो आजन्म रात्रि मे चारों प्रकार के आहार का त्याग करते हैं उन्हें नरश्री सुरश्री और सिद्धिश्री—मोक्ष सुलभ है और वे स्व-पर के आधार स्वरूप हैं।

सुश्रावक

जे चिइवंदणि वंदणइं, पडकमणइ उज्जुत्त।
ते निय कुळ सरवर कमल, सुस्सावय सुपुत्त ॥६५॥

जो चैत्यवन्दन में, वांदणा में और प्रतिक्रमण में तत्पर हैं, वे सुश्रावक सुपूत और अपने कुलरूपी सरोवर के कमल हैं।

जे जिण-पूयणि मुणि-नमणि, निच्चु पयच्चु करेंति।
ते कल्लाण निहाण फुडु, लहु पव्वज्ज धरेंति ॥६६॥

जो जिन पूजा में, साधुओं को वन्दन करने में नित्य प्रयत्न करते हैं और शीघ्र प्रव्रज्या धारण करते हैं वे स्पष्ट कल्याण के निधान हैं।

जे विज्जंतइ घणि दविणि, वियरहिं पत्ति न दाणु।
दीणह दुहियह दुत्थिय(ह), तह कहिं भवि सम्माणु ॥६७॥

जो बहुत से द्रव्य की विद्यमानता मे भी पात्र को दान नही देते, दीन, दुखी और दुर्दशाग्रस्तों को दान नहीं देते, उनका ससार मे कैसे सम्मान होगा ?

निम्मलु सीलु न पालियउ, दमिय न करण तुरंग।
मण मयगलु नो वसिय कयउ, किह वुन्नइ नीसंगु ॥६८॥

निर्मल शील का पालन नही किया, इन्द्रिय रूप घोड़ों का दमन नहीं किया और मनरूपी मतवाले हाथी को वश में नही किया वे निस्सग (अनासक्त-विरक्त) कैसे कहे जाय ?

सत्ति न गूहइ मिस करइ, चरइ न तवु समुद्दु ।
दुग्गइ खड्डहि डड्डियहि, सणु फुडु अप्पा छुद्दु ॥९९॥
शक्ति को नहीं छिपाता, बहाना करता है, तप के करने में सम्यक् प्रयत्न नहीं करता स्पष्ट ही उसने दुर्गति के खड्डे में अपनी आत्मा और शरीर को फेंक दिया।

जिण ससिउ निच्चुवि करहि, सम धम्मिय वच्छल्लु ।
सासण सार सुदार मणु, जिम्व होयहि नीसल्लु ॥१००॥
'जिन' का कहा हुआ स्वधर्मीवात्सल्य सदैव करो एवं उदार चित्त से शासन की सार सम्भाल करो, जिससे कि दुख रहित हो जाओ।

जण जिण पवयण मइलियइ, ज निय कुलह विरद्धु ।
त मा काहिसि जिम होयहि, कम्म विसुज्जु विसुद्ध॥१०१॥
जिन प्रवचन को मलिन करने वाले और अपने कुल के विरुद्ध जो (काय) हो उसे मत करो। ताकि कर्म विसर्जन कर विशुद्ध हो जाओगे।

जह वुत्तिवि मणि तुल्ल गुण, सुसमण लिंगिय मुंड ।
तह फुडु जड चूडामणि, हंस न कथूर(? कयइ) मुरण्ड॥१०२
जैसे वेषधारी व मुण्डित सुश्रमण को मणि तुल्य गुण की उपमा दी जाती है, लेकिन चूड़ामणि तो स्पष्ट ही जड़ पदार्थ है हँस को कभी बगला (?) नहीं कहा जाता।

जे पावेविणु जिण वयण, उस्सुत्तइ भासति ।
ते पाविवि चिंतारयणु, (खण्डो) खण्डि करति ॥१०३॥
जो जिन के वचन को पा कर भी सूत्र विरुद्ध भाषण करते हैं वे चिन्तामणि को पाकर भी उसे खण्ड खण्ड कर डालते हैं।

जो चिंतामणि पत्थरह, सुरतरु विस रुक्खाण।
सो अन्तरु बुह वजरहिं, सुसमण लिंग-धराण ।।१०४।

जो चिन्तामणि और पत्थर में, कल्पवृक्ष और विषवृक्ष में, पण्डित और मूर्ख में अन्तर है वही अन्तर सुश्रमण और वेषधारी में है।

जो अवगन्निवि मुणि रयण, लिंग सुभत्ति करेइ।
सो छंडेविणु अमय रसु, हालाहलु चक्खेइ ।।१०५।।

जो मुनि-रत्न की अवगणना करके लिंग में (बाह्य वेश में) भक्ति करता है वह अमृत-रस को त्याग कर हालाहल को चखता है।

कोह दवानल उल्हवहु, समय मेय पूरेण।
भव संतावु (व) समु जिम्व, मुसुसु सूरहु दूरेण ।।१०६।।

सिद्धान्त रूपी मेघ जल के प्रवाह से क्रोध रूपी दावानल को बुझा दो और ससार के सन्ताप को उपशान्त कर दो जैसे सूर्य दूर से ही अन्धकार नाश कर देता है।

माण महीहरि मा चडहु, अवगुण भिल्लिहि किण्णि।
जइ कुसलिण रक्खिउ मणहु, भवियहु रयणिहिं तिन्नि ।।१०७।।

हे भव्य। यदि ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप त्रिरत्नों की कुशलता पूर्वक रक्षा करना चाहते हो तो अभिमान रूपी पहाड पर मत चढो जो अवगुण रूपी भीलों-लुटेरों से आकीर्ण है।

माय भुयंगी गरुल भरु, जहि विक्खेरइ निच्चु।
तहिं गुरु कम्मइं सुय अमउ, दूसिज्जइ निमिच्चु ।।१०८।।

मायारूपी सांपिन जहाँ सदा जहर का समूह बिखेरती रहती है, वहाँ मारी कर्मियों द्वारा श्रुतरूपी अमृत निश्चय ही दूषित होता है।

गुरु पवहणि आरुहिवि लहु, लोह समुद्द तरेहि।
सो पायालि डुहावइ, अप्पाणउ पाडेहि ॥१०६॥

वह (लोभ) आत्मा को गिराकर पाताल में स्थापित कर देगा अत गुरु रूप जहाज पर चढ कर तुरन्त लोभ रूपी समुद्र को पार करो।

पाव पयस पसग रसु, म कइयइ वि करेसु।
घम्मु चरतहु जिम्ब सयलु, छिज्जइ कम्म किलेसु ॥११०॥

पापी सखा का भी प्रसंग कभी मत करो, जिससे धम का आचरण करते हुए समस्त कम-क्लेश नष्ट हो जायँ।

तिविहु जु चेइउ पन्नियउ, भगवतिहि सिद्धति।
निस्सु अणिस्सु अणायय‌णु, त सद्दहिं अ (१च्च)ति ॥१११॥

मगवन्त ने शास्त्रों में तीन प्रकार के चैत्य बतलाये हैं—निश्राकृत, अनिश्राकृत और अनायतन। उनकी लोग पूजा एवं श्रद्धा करते हैं।

विहि चेईहरि पइ दियहु, गमणच्चणहिं करेहु।
अन्नइ दुन्निवि परिहरहु, मा ससारि पडेहु ॥११२॥

विधि चैत्यालय में प्रतिदिन जा कर पूजा अर्चा करो। अन्य दोनों का परित्याग कर दो ससार सागर में मत पड़ो।

निसणहु निच्चु वि जिण समउ, सेवहु सुहगुरु पाय।
सव्व विरइ मणु सठवहु, जेण न हुंसि अवाय ॥११३॥

सदैव जिनोक्त सिद्धान्त को सुनो सद्गुरु के चरणों की सेवा करो, सर्व विरति चारित्र में मन को स्थापित करो, जिससे कि अनिष्ट न हो।

तित्थयराण परायणह, उवसंतह सुजयाण।
सिवसुह लालस माणसहं, भद्दुहवउ भवियाण ।११४॥

तीर्थङ्करो में परायण, उपशम वाले, विजय शील और मोक्ष सुखाभि-
लाषी भव्य जनो का कल्याण हो।

भव विरसत्तणु भाविरह, तव संजम निरयह।
वेच्चइ जाह मणुस्स भवु, ते निहि सव्व सुहहं ॥११५॥

ससार के प्रति विरक्ति पाने वाले तप और सयम में निरत हैं उनका
मनुष्य भव मय सुखों के निधान (मोक्ष) का मार्ग है।

धम्मुवएसं पयं आराहेहिंति जे महासत्ता।
चारित्त व(?चं)दन धवलिय तिजया जाहिंति ते सिद्धिं॥११६॥

महान् सत्वशील जो पुरुप धर्मोपदेश पद की आराधना करते हैं वे
चारित्ररूपी चन्दन से तीनो लोगो को उज्वल करनेवाले, सिद्धि को प्राप्त
होते हैं।

॥ इति वालाववोध प्रकरण समाप्त ॥

❁ ॐ अर्हं पद धुन ❁

तर्ज —ऋषभदयाला जग प्रतिपाला

ॐ अर्हं ॐ अर्हं मेरे, मनमें हरदम रहा करे।
ॐ अर्हं ॐ अर्हं पावन, रस रसना से बहा करे॥
ॐ अर्हं मैं ॐ अर्हं तू, ॐ अर्हं यह आतम है।
ॐ अर्हं तन्मय शिव सुन्दर, ॐ अर्हं परमातम है॥
ॐ अर्हं गुण कवी द्र गाते, ॐ अर्हं पदवी पाते।
ॐ अर्हं ॐ अर्हं जय जय, ॐ अर्हं है मन भाते॥

श्री अगरचन्द नाहटा, श्री भवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित एव लिखित कुछ महत्वपूर्ण उपलब्ध प्रकाशन

१	ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह	५ ००
२	बीकानेर जैन लेख सग्रह	१० ००
३	दादा जिनकुशल सूरि	सदुपयोग
४	युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि	१.२५
५	समयसुन्दर कृति कुसुमांजली	५ ००
६	ज्ञानसार ग्रथावली	२ ५०
७	सीताराम चरित्र	५०
८.	विनयचन्द्र कृति कुसुमांजली	४ ००
९	पद्मिनी चरित्र चौपाई	४ ००
१	धर्मवर्द्धन ग्रथावली	५ ००
११	सीताराम चउपई—(समयसुन्दर)	४ ०
१२	समयसुन्दर रास पचक	३ ००
१३	जिनराजसूरि कृति कुसुमांजली	४ ००
१४	जिनहर्ष ग्रथावली	६०
१५	अष्ट प्रवचन माता सज्झाय साथ	५०
१६	पच भावना सज्झाय साथ आदि	७५
१७	रत्नपरीक्षा	२ ००

प्राप्तिस्थान—

नाहटा ब्रादर्स

४, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता ७